परम पूज्य
संत श्री आसारामजी बापू
श्रीकृष्ण-जन्माष्टमी यह संदेश देती है कि शरद ऋतु में मक्खन-मिश्री आदि मधुर रसयुक्त पदार्थ खाओ-खिलाओ, मन को श्रीकृष्ण एवं ब्रह्मनिष्ठ महापुरुषों की नाईं समता व प्रसन्नता के माधुर्य से खिला हुआ रखो और बुद्धि को आत्मविश्रांति के मधुर रस का पान कराओ।
संत श्री आसारामजी आश्रम द्वारा प्रकाशित
ऋषि प्रसाद
सितंबर २००४
मूल्य : रु. ६/-
हिन्दी

ऋषि प्रसाद

वर्ष : १५ अंक : १४१
सितंबर २००४ मूल्य : रु. ६-००
भाद्रपद-आश्विन, वि.सं.२०६१

सदस्यता शुल्क

भारत में
(१) वार्षिक : रु. ५५/-
(२) द्विवार्षिक : रु. १००/-
(३) पंचवार्षिक : रु. २००/-
(४) आजीवन : रु. ५००/-

नेपाल, भूटान व पाकिस्तान में
(१) वार्षिक : रु. ८०/-
(२) द्विवार्षिक : रु. १५०/-
(३) पंचवार्षिक : रु. ३००/-
(४) आजीवन : रु. ७५०/-

विदेशों में
(१) वार्षिक : US $ 20
(२) द्विवार्षिक : US $ 40
(३) पंचवार्षिक : US $ 80
(४) आजीवन : US $ 200

कार्यालय 'ऋषि प्रसाद' श्री योग वेदांत सेवा समिति, संत श्री आसारामजी आश्रम, संत श्री आसारामजी बापू आश्रम मार्ग, अमदावाद-३८०००५.
फोन : (०७९) २७५०५०१०-११.
e-mail : ashramindia@ashram.org
web-site : www.ashram.org

स्वामी : संत श्री आसारामजी आश्रम
प्रकाशक और मुद्रक : कौशिक वाणी
प्रकाशन स्थल : श्री योग वेदांत सेवा समिति, संत श्री आसारामजी आश्रम, संत श्री आसारामजी बापू आश्रम मार्ग, अमदावाद-५.
मुद्रण स्थल : हार्दिक वेबप्रिंट, राणीप और विनय प्रिंटिंग प्रेस, अमदावाद।
सम्पादक : कौशिक वाणी
सहसम्पादक : प्रे. खो. मकवाणा

'ऋषि प्रसाद' के सदस्यों से निवेदन है कि कार्यालय के साथ पत्र-व्यवहार करते समय अपना रसीद क्रमांक अथवा सदस्यता क्रमांक अवश्य लिखें।

Subject to Ahmedabad Jurisdiction

अनुक्रम

※ पूज्यश्री के दर्शन-सत्संग ※

※ **सोनी चैनल** पर 'संत आसारामजी वाणी' प्रतिदिन सुबह ७-०० बजे। ※ **संस्कार चैनल** पर 'परम पूज्य लोकसंत श्री आसारामजी बापू की अमृतवर्षा' रोज दोप. २-०० बजे तथा रात्रि ९-४० बजे। ※ **आस्था चैनल** पर 'संत श्री आसारामजी बापू की अमृतवाणी' सुबह ८-०० तथा दोप. २-३० बजे। ※ **साधना चैनल** पर 'संत श्री आसारामजी बापू की सत्संग-सरिता' रोज रात्रि ९-०० बजे।

शोक-मोह से परे

✲ संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से ✲

यस्मिन्सर्वाणि भूतान्यात्मैवाभूद्विजानतः ।
तत्र को मोहः कः शोक एकत्वमनुपश्यतः ॥

'जिस समय विज्ञानी पुरुष के लिए सब भूत आत्मा ही हो गये उस समय एकत्व देखनेवाले उस विद्वान को क्या शोक और क्या मोह हो सकता है ?'

(ईशावास्योपनिषद् : ७)

एक होता है ज्ञान और दूसरा होता है विज्ञान। ऐहिक जगत की वस्तुओं का पहले ज्ञान होता है। जब उनका विश्लेषण करके पूरा रहस्य पता चल जाता है, तब वह 'विज्ञान' कहलाता है। ऐसे ही आध्यात्मिक जगत में आत्मज्ञान सुनने और विचार करने पर भी जब तक आत्मानुभव न हो तब तक वह केवल 'आत्मा का ज्ञान' होता है किंतु जब आत्मा-परमात्मा का अनुभव होता है तो वह 'विज्ञान' अर्थात् 'आत्मसाक्षात्कार' कहलाता है।

ज्ञानविज्ञानतृप्तात्मा... आत्मज्ञान का श्रवण, मनन, निदिध्यासन करके जब आत्मा का अनुभव हो जाता है, तब मनुष्य तृप्तात्मा हो जाता है। जब वह तृप्तात्मा हो जाता है तो फिर उसे शोक, मोह कैसे हो सकते हैं ? शोक, मोह तो अतृप्त व्यक्ति को ही होते हैं क्योंकि वह सोचता है : 'यह मिल जाय... यह चला न जाय... यह भोग लूँ... यह पा लूँ...' जो अपने-आपमें तृप्त है, उसे तो सदा मौज-ही-मौज है। ऐसे आत्मविज्ञानी (आत्मसाक्षात्कारी) पुरुष को कोई पकड़ नहीं होती, कोई ममता नहीं होती, कोई आग्रह नहीं होता, कोई शोक या मोह नहीं होता... उनको तो यह भी नहीं लगता कि संसार मिथ्या है तो इसे छोड़ो, वे तो समझते हैं कि संसार भी ब्रह्मस्वरूप है। छोड़ना-पकड़ना, कर्म का कर्तापन, सुख-दुःख का भोक्तापन, मान-अपमान एवं लाभ-हानि के प्रसंग उनको प्रभावित नहीं कर सकते। जैसे आकाश में पक्षियों के और जल में मछलियों के पदचिह्न नहीं पड़ते, वैसे ही उनके चित्त में राग-द्वेष के संस्कार नहीं पड़ते। उन आत्मविज्ञानी महापुरुषों की ऐसी विलक्षण अवस्था होती है। आम आदमी उन्हें पहचानने में समर्थ नहीं होते। वे जहाँ निवास करते हैं वह स्थान एवं उनको छूकर आनेवाली हवाएँ ज्ञान-विज्ञान की तरंगें फैलाती हैं। ऐसे बुद्ध पुरुषों का सान्निध्य, सत्संग-सुमिरन साधकों को आत्मसिद्धि-आत्मतृप्ति-आत्मसंतुष्टि की तरफ ले जाने में बड़ी मदद करता है।

स तृप्तो भवति, अमृतो भवति ।
स तरति, लोकांस्तारयति ।

(नारदभक्तिदर्शन : सूत्र ४,५०)

आप भी ऐसे बनिये। भौतिक विज्ञानी तो बहुत हैं, आप आत्मविज्ञानी बनिये। आत्मविज्ञानी माने परमात्म-प्राप्त महापुरुष।

जिज्ञासु साधक या भक्त को तो थोड़ा-बहुत आग्रह रखना पड़ता है कि 'उचित करना है, अनुचित छोड़ना है... यह करना है, यह नहीं करना है...' किंतु जब शुभ का स्वीकार और अशुभ का त्याग करते-करते विमल विवेक का उदय हो जाता है, बुद्धि सूक्ष्म और व्यापक हो जाती है तो फिर उसका सहज स्वभाव हो जाता है।

नानक बोलै सहजि सुभाइ। (सुखमनी साहिब)

फिर वे महापुरुष सहज स्वभाव से लेते-देते, खाते-पीते दिखते हैं किंतु उनको भीतर से कोई पकड़ नहीं होती। पकड़ तो तब होती है जब संसार से सुख लेने की बुद्धि होती है। जिनके लिए सुखस्वरूप परमात्मा अपना आत्मा, अपना-आपा होकर बैठा है, उनको कैसी पकड़ ? श्रीकृष्ण कभी गायें चराते हैं, कभी अर्जुन का रथ चलाते हैं, कभी छछियाभर छाछ के लिए गोपियों के आगे नाचते हैं तो कभी बड़े-बड़े पंडितों को भी चकित कर दे, ऐसा गीता का उपदेश देते हैं... व्यवहार के लिए व्यवहार का निर्वाह तो कर लेते हैं

किंतु रहते अपने-आपमें सदा पूर्ण ही हैं।

भगवान श्रीकृष्ण की नाईं, भगवान श्रीराम की नाईं, कबीरजी और नानकजी की नाईं हमारा अपना-आपा भी पूर्ण है, किंतु उस पूर्ण को जाने बिना साढ़े तीन हाथ की देह को 'मैं' और उसके सम्बंधियों को 'मेरा' मानते हैं इसलिए शोक-मोह होता है।

लिखि-लिखि-लिखि जग लिखो
पढ़ि-पढ़ि-पढ़ि क्या कीन्ह ?
तुलसी हृदय रघुवीर न चीन्हा
तो विरथा जन्म लीन्ह ॥

चाहे जितना धन कमा लो, कितनी भी सत्ता पा लो, कितने ही बड़े विद्वान हो जाओ किंतु यदि हृदय में छुपे हुए असली 'मैं' को नहीं जाना तो क्या जाना ? पूर्ण सुख नहीं पाया तो क्या पाया ? पूर्ण ज्ञान को नहीं पाया तो क्या पाया ?

पूर्ण ज्ञान पाने का सरल उपाय क्या है ?

जो पूर्ण होता है वह सदा रहता है और एकरस होता है। अपूर्ण सदा नहीं रहता, एकरस नहीं होता वरन् बदलता रहता है। जो बदलता रहता है, वह माया है...

एक माई जगत बियायी तीन चेले परवान।
एक संसारी एक भंडारी एक देवे निर्वान॥

यदि कोई व्यक्ति बदलनेवाले को बदलनेवाला जानकर अबदल आत्मा का, पूर्ण का ज्ञान पा ले और उसे अपने जीवन में उतारकर उसका अनुभव कर ले तो वह 'स्व' के ज्ञान-विज्ञान से तृप्तात्मा हो जायेगा, शोक-मोह से पार हो जायेगा...

शोक-मोह, काम-क्रोध तो आते-जाते रहते हैं, किंतु आप अपने को भूले हुए हैं अतः उनमें बह जाते हैं।

भूल्या जभी आपनूँ तभी हुआ खराब।

आप जब अपने-आपको भूल बैठते हैं, तभी विषय-विकारों के, मेरे-तेरे के चक्कर में पड़कर दर-दर की ठोकरें खाते फिरते हैं।

कोई जाय काशी तो कोई जाय मक्के ।
आत्मज्ञान के सिवा खाते दर-दर के धक्के ॥

उपनिषद् कहती है - **यस्मिन् सर्वाणि भूतानि...** जिसकी दृष्टि से आत्मा ही सर्वभूत हो रहा है, उस एकत्व को निरंतर देखनेवाले आत्मविज्ञानी पुरुष को मोह कहाँ और शोक कहाँ ?

यह ज्ञान सुन तो लिया और अच्छा भी लगा, किंतु फिर लग जायेंगे संसार के कार्यों में... इसका निरंतर अभ्यास नहीं है। बिजली चमकने से क्षणिक प्रकाश हो जाता है फिर तुरंत अँधेरा हो जाता है, किंतु सूर्य के प्रकाश की नाईं नित्य प्रकाश हो इसके लिए नित्य अभ्यास की आवश्यकता है। केवल एक वर्ष नीच कर्मों का त्याग करके रोज १२० मालाएँ 'ॐ' का जप, ३ घंटे ध्यान, ३ घंटे 'श्री योगवाशिष्ठ महारामायण' ग्रंथ का अध्ययन व विचार और ३ घंटे आत्मवेत्ताओं का संग हो तो अवश्य ईश्वरप्राप्ति होगी - यह वशिष्ठजी का वचन है। जो नित्य अभ्यास करके ज्ञानरूपी सूर्य के प्रकाश में जीता है, उसे फिर अज्ञानजनित शोक और मोह स्पर्श नहीं करते। अपने आत्मा में वह तृप्त हो जाता है, अतः उसके लिए कोई कर्तव्य शेष नहीं रहता। फिर तो उसका स्वनिर्मित विनोद (सहज कर्म) संसार के उद्धार का काम करता है। उसके लिए व्यवहार विनोदमात्र हो जाता है।

जब तक कर्तव्य है तब तक समझो, कुछ-न-कुछ अज्ञान शेष है, आत्मा का अनुभव नहीं हुआ है। अनुभव हो गया तो फिर कोई कर्तव्य नहीं।

लोगों को लगता है कि भगवान श्रीकृष्ण, भगवान श्रीराम, श्रीमद् आद्य शंकराचार्य, संत एकनाथजी, नानकजी, पूज्य श्री लीलाशाहजी बापू ने बड़े-बड़े काम किये किंतु उनसे कहो कि ''आपने इतने सारे बड़े-बड़े काम किये !'' तो वे कहेंगे : ''बड़े-छोटे तुम गिनते रहो, हमने तो कभी कुछ किया ही नहीं।''

सूर्यदेव से कहो कि ''आपने आज करोड़ों जीवों को ऊर्जा दी, असंख्य गैलन पानी का वाष्प बनाया।'' तो वे कहेंगे कि ''यह सब तुम जानो, मैं नहीं जानता। मैं तो अपनी महिमा में मस्त हूँ।'' ऐसे ही ज्ञानीजन अपनी महिमा में मस्त रहते हैं।

हूँ मस्त मैं अपनी महिमा में,
है कुछ भी गैर अज राम नहीं।
सब कल्पित धूम मचाते हैं,
हर हर ॐ हर हर ॐ॥

मैं कृष्ण बना, मैं कंस बना,
मैं राम बना, मैं रावण था।
हाँ वेद अब कसमें खाते हैं,
हर हर ॐ हर हर ॐ॥
सब ऋषियों के आईने-दिल में,
मेरा नूर दरखशाँ था।
मुझ ही से शायर लाते हैं,
हर हर ॐ हर हर ॐ॥

शायरों की शायरी मुझ चैतन्य से ही स्फुरित होती है। मैं ही कृष्ण बनकर आया था और कंस बनकर भी आया था। मैं ही राम बनकर आया था और रावण बनकर भी आया था।

इस ज्ञान-विज्ञान से जो तृप्त हो गये हैं, उन्हें शोक-मोह नहीं होता। वे ही जीवन का वास्तविक फल पाये हुए होते हैं। यदि आम के वृक्ष पर आम का फल न लगे तो वह वृक्ष निष्फल है। ऐसे ही मनुष्य-जन्म में यदि आत्मज्ञानरूपी फल हाथ न लगा, शोक-मोह से पार होने का अमृतफल हाथ न लगा तो समझो, वह विफल हो गया। जिसे आत्मज्ञान नहीं हुआ उसका जीवन शोक-मोहरूपी सागर में ही डूबता-उतराता रहता है लेकिन जिसने अपने-आपको आत्मा-परमात्मा से अभिन्न जान लिया है, उसका देखना-सुनना, सोचना-समझना सब सही हो जाता है, वह आप्तकाम हो जाता है।

जो अपनी कामनाओं से बँधा है वह जिस चीज का भी अर्थ लगायेगा, निश्चय ही अपनी मति के अनुसार, अपने पक्ष में ही लगायेगा। वह अपनी कल्पना, अपनी मान्यता, अपनी जाति-पाँति के दायरे में बँधकर ही अर्थ लगायेगा। जैसे प्रकाश के आगे जिस रंग का काँच रख दो वैसा ही प्रकाश दिखता है, ऐसे ही चैतन्य का, ज्ञान का प्रकाश है तो शुद्ध, किंतु अपनी-अपनी कल्पना-धारणा आदि से मानव अपने ढंग से सही-गलत अर्थ लगा बैठता है। किंतु ज्ञानी के द्वारा ऐसा नहीं होता। ज्ञानी का अपना कोई आग्रह या पकड़ नहीं होती।

एक धर्मात्मा सज्जन थे। वे सुबह ज़ल्दी उठते थे। उन्होंने घर में नियम बना दिया कि 'जो देर से उठेगा उसे नाश्ता नहीं मिलेगा। जो हवन नहीं करेगा उसे दोपहर का भोजन नहीं मिलेगा।' अतः सब डर के मारे सुबह जल्दी उठने लगे और हवन करने लगे।

कुछ समय बीतने पर उन सज्जन को कोई सत्संग में ले गया। जब उन्होंने सत्संग सुना तो उनका विवेक जग गया कि 'हवनादि सब तो कर्मकांड के अंतर्गत आते हैं और कर्म कर्ता के अधीन रहता है। कर्ता की जैसी भावना होती है, वैसा उसे फल मिलता है। लेकिन वास्तव में कर्ता कौन है? - इसको पहचाने बिना कितना भी कर्मकांड कर लो, उससे आखिरी मंजिल नहीं मिलती।'

इस प्रकार सत्संग की बातों का श्रवण-मनन-निदिध्यासन करते-करते जब उनका विवेक प्रखर हुआ तो उन्हें ज्ञान हो गया और ज्ञान होने पर उनका आग्रह स्वतः छूट गया। आग्रह छूट गया तो उनके घर के लोग, जो डर के मारे सुबह जल्दी उठते थे, अब स्वाभाविक उठने लगे और डर के मारे जो हवन करते थे, उसे छोड़कर ईश्वरप्राप्ति के मार्ग पर लग गये।

ज्ञानी किसीसे आग्रह नहीं रखते कि सब हवन ही करें या 'हरि ॐ' ही कहें। कोई 'राम-राम' कहता है तो भी ठीक है और कोई 'अल्ला होऽऽऽ अकबर...' कहता है तो भी ठीक है। लेकिन वे इतना जरूर कहते हैं कि रोम-रोम में जो छुपा है, उसका नाम 'राम' है - ऐसा समझकर 'राम-राम' जपें अथवा सबमें अल्लाह है ऐसा सोचकर 'अल्ला होऽऽऽ अकबर...' कहें। तो 'राम-राम' कहनेवाले भी उनके भक्त हो जाते हैं और 'अल्ला होऽऽऽ अकबर...' कहनेवाले भी उनके भक्त हो जाते हैं।

उनका कोई आग्रह नहीं होता क्योंकि वे वस्तुस्थिति को ज्यों-की-त्यों जान लेते हैं। 'सारे मत-पंथों की गहराई में जो है, वह मेरा अपना ही स्वरूप है।' - ऐसा वे भलीभाँति जानते हैं। इसीलिए उन्हें न शोक होता है, न मोह होता है और न ही कोई आग्रह रहता है।

यदि कोई उन्हें कहे कि ''बाबा! हम तो 'सीताराम-सीताराम' करते हैं।'' तो वे कहेंगे : ''ठीक है, बढ़िया है। लेकिन सीताराम के स्वरूप को जानने के लिए ऐसा-ऐसा करना।''

''बाबा! हम तो नमाज पढ़ते हैं।''

''ठीक है, पढ़ो। लेकिन रोजा रखकर, नमाज पढ़कर नश्वर चीजों की इच्छा न करो। द्वेषबुद्धि, झगड़ाखोरी, मारामारी बढ़ानेवाली दूसरों की बातों में मत आओ बल्कि **लाइलाह इल्लिल्लाह** - अल्लाह के सिवाय कुछ भी नहीं है। - ऐसी नजर रखो।''

''बाबा ! हम तो 'गणपति बाप्पा मोरया !' कहते हैं।''

''ठीक है, कहो। इन्द्रियरूपी गणों का जो पति अर्थात् स्वामी है, वह आत्मा ही गणपति है - ऐसा मानकर कहो।''

''बाबा ! हम तो 'श्रीकृष्ण गोविंद हरे मुरारे...' ऐसा कीर्तन करते हैं।''

''करो, अच्छी बात है। लेकिन श्रीकृष्ण का मतलब क्या है ? जो कर्षित-आकर्षित करता है, आनंदित-आह्लादित करता है, वही श्रीकृष्ण सबके दिलों में मौजूद है। अतः दूसरों के दिल को ठेस न पहुँचे और सबकी भलाई हो, ऐसा भाव रखकर कीर्तन करो तथा प्रेममूर्ति श्रीकृष्ण के प्रेम-प्रसाद को सबके प्रति बरसाओ। कीर्तन के पहले और बाद में भी श्रीकृष्ण के आनंदमय स्वरूप में शांत व आनंदित हुआ करो। थोड़ा मौन कीर्तन भी करो, मौन माधुर्य में खो जाओ तो अंतरात्मदेव श्रीकृष्ण तुम पर प्रसन्न होंगे।''

''बाबा ! हम तो अष्टभुजी माँ जगदंबा को मानते हैं।''

''अच्छी बात है। वे तो आद्यशक्ति हैं। अष्टभुजी माँ जगदंबा अर्थात् अष्टधा प्रकृति। किंतु सामान्य आदमी अष्टधा प्रकृति को नहीं समझ सकते, इसलिए संतों-महापुरुषों ने अष्टभुजी माँ जगदंबा के रूप में उसकी उपासना की व्यवस्था कर दी है।''

''बाबा ! हम तो चतुर्भुज नारायण को मानते हैं।''

''बहुत बढ़िया बात है। मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार - ये उनकी चार मुख्य वृत्तियाँ हैं और यही चतुर्भुज का आध्यात्मिक अर्थ है। आप चतुर्भुज नारायण को बाहर की आकृति में मानते हो तो हमें आनंद है, लेकिन हर अंतःकरण में भी वे ही नारायण विराजमान हैं, ऐसा भी समझो, उनमें विश्रांति पाओ। 'नारायण... नारायण... नारायण... नारायण...' इस प्रकार 'नारायण' नाम का चार बार जप करके भोजन करना, काम करना। इससे आपके काम में नारायण का संपुट मिलेगा व आप सफल होंगे और यदि सफलता देनेवाले प्रभु से स्नेह करोगे तो अंदर की सफलता भी प्रकट होगी।''

''बाबा ! हम तो भगवान भोलेनाथ का भजन करते हैं।''

''बहुत बढ़िया बात है। भगवान शिव का अर्थ ही है कल्याणस्वरूप। अतः आप भी दूसरों के कल्याण की भावना रखकर कर्म करना। इससे कल्याणस्वरूप भगवान शिव आप पर प्रसन्न होंगे। कल्याणस्वरूप शिव सबको आत्मस्वरूप से सत्प्रेरणा देते हैं, कोई गलती करता है तो रोकते हैं। कैसे हैं वे भोलों के भगवान !''

इस प्रकार ज्ञानी सबका अनुमोदन कर देंगे क्योंकि वे जानते हैं कि भले आकृतियाँ भिन्न-भिन्न हैं किंतु सारे नाम एवं सारी आकृतियों के पीछे अभिन्न तत्त्व तो एक-का-एक है। जिन्होंने उस अभिन्न आत्मा-परमेश्वर का ज्ञान पाया है, उसका माधुर्य पाया है, उन महापुरुषों से जिसे भी मार्गदर्शन मिल जाता है या साधना के विविध प्रयोग करने की कला मिल जाती है, उसका हजारों वर्षों का काम चंद महीनों में पूरा हो जाता है।

सत्रहवें अध्याय का माहात्म्य

श्रीमहादेवजी कहते हैं : पार्वती ! सत्रहवें अध्याय की अनंत महिमा श्रवण करो । राजा खड्गबाहु के पुत्र का दुःशासन नामक एक नौकर था । वह बड़ी खोटी बुद्धि का मनुष्य था । एक बार वह माण्डलिक राजकुमारों के साथ बहुत धन की बाजी लगाकर हाथी पर चढ़ा और कुछ ही कदम आगे जाने पर लोगों के मना करने पर भी हाथी के प्रति जोर-जोर-से कठोर शब्द कहने लगा । उसकी आवाज सुनकर हाथी क्रोध से अंधा हो गया और दुःशासन पैर फिसल जाने के कारण पृथ्वी पर गिर पड़ा । दुःशासन को गिरकर कुछ-कुछ उच्छ्वास लेते देख काल के समान निरंकुश हाथी ने क्रोध से भरकर उसे ऊपर फेंक दिया । ऊपर से गिरते ही उसके प्राण निकल गये । इस प्रकार कालवश मृत्यु को प्राप्त होने के बाद उसे हाथी की योनि मिली और सिंहल द्वीप के महाराज के यहाँ उसने बहुत समय व्यतीत किया ।

सिंहल द्वीप के राजा की महाराज खड्गबाहु से बड़ी मैत्री थी, अतः उन्होंने जलमार्ग से उस हाथी को मित्र की प्रसन्नता के लिए भेज दिया । एक दिन राजा ने किसी श्लोक की समस्यापूर्ति से संतुष्ट होकर एक कवि को पुरस्कारस्वरूप वह हाथी दे दिया और उसने सौ स्वर्णमुद्राएँ लेकर उसे मालवनरेश के हाथ बेच दिया । कुछ काल व्यतीत होने पर वह हाथी यत्नपूर्वक पालित होने पर भी असाध्य ज्वर से ग्रस्त होकर मरणासन्न हो गया । हाथीवानों ने जब उसे ऐसी शोचनीय अवस्था में देखा तो राजा के पास जाकर शीघ्र ही हाथी का सारा हाल कह सुनाया कि ''महाराज ! आपका हाथी अस्वस्थ जान पड़ता है । उसका खाना, पीना और सोना सब छूट गया है । हमारी समझ में नहीं आता इसका क्या कारण है ?''

यह समाचार सुनकर राजा ने हाथी के रोग पहचाननेवाले चिकित्साकुशल मंत्रियों के साथ उस स्थान पर पदार्पण किया, जहाँ वह हाथी ज्वरग्रस्त होकर पड़ा था । राजा को देखते ही उसने ज्वरजनित वेदना को भूलकर सबको आश्चर्य में डालनेवाली मानुषी वाणी में कहा : 'संपूर्ण शास्त्रों के ज्ञाता, राजनीति के समुद्र, शत्रु-समुदाय को परास्त करनेवाले तथा भगवान विष्णु के चरणों में अनुराग रखनेवाले महाराज ! इन औषधियों से क्या लेना है ? वैद्यों से भी कुछ लाभ होनेवाला नहीं है, दान और जप से भी क्या सिद्ध होगा ? आप कृपा करके गीता के सत्रहवें अध्याय का पाठ करनेवाले किसी ब्राह्मण को बुलवाइये ।'

हाथी के कथनानुसार राजा ने गीता-पाठ करनेवाले एक पवित्रात्मा ब्राह्मण को बुलवाया । तदनंतर उन ब्राह्मण ने जब उत्तम जल अभिमंत्रित करके उसके ऊपर डाला, तब दुःशासन गजयोनि का परित्याग करके सद्गति को प्राप्त हुआ ।

राजा ने दुःशासन को दिव्य विमान पर आरूढ़ तथा इन्द्र के समान तेजस्वी देखकर पूछा : ''पूर्वजन्म में तुम्हारी क्या जाति थी ? क्या स्वरूप था ? कैसे आचरण थे ? और किस कर्म से तुम यहाँ हाथी होकर आये थे ? ये सारी बातें मुझे बताओ ।''

राजा के इस प्रकार पूछने पर संकट से छूटे हुए दुःशासन ने विमान पर बैठे-बैठे स्थिरता के साथ अपने पूर्वजन्म का उपर्युक्त वृत्तांत यथावत् कह सुनाया । तत्पश्चात् नरश्रेष्ठ मालवनरेश भी गीता के सत्रहवें अध्याय का पाठ करने लगे । इससे थोड़े ही समय में उनकी मुक्ति हो गयी ।

('पद्म पुराण' से)

गीता के १७वें अध्याय के कुछ श्लोक

आयुःसत्त्वबलारोग्यसुखप्रीतिविवर्धनाः ।
रस्याः स्निग्धाः स्थिरा हृद्या आहाराः सात्त्विकप्रियाः ॥

आयु, बुद्धि, बल, आरोग्य, सुख और प्रीति को बढ़ानेवाले, रसयुक्त, चिकने और स्थिर रहनेवाले तथा स्वभाव से ही मन को प्रिय - ऐसे आहार अर्थात् भोज्य पदार्थ सात्त्विक पुरुष को प्रिय होते हैं। (८)

देवद्विजगुरुप्राज्ञपूजनं शौचमार्जवम् ।
ब्रह्मचर्यमहिंसा च शारीरं तप उच्यते ॥

देवता, ब्राह्मण, गुरु और ज्ञानीजनों का पूजन, पवित्रता, सरलता, ब्रह्मचर्य और अहिंसा - यह शरीर-सम्बंधी तप कहा जाता है। (१४)

अनुद्वेगकरं वाक्यं सत्यं प्रियहितं च यत् ।
स्वाध्यायाभ्यसनं चैव वाङ्मयं तप उच्यते ॥

जो उद्वेग न करनेवाला, प्रिय, हितकारक व यथार्थ भाषण है तथा जो वेद-शास्त्रों के पठन का एवं परमेश्वर के नाम-जप का अभ्यास है - वही वाणी-सम्बंधी तप कहा जाता है। (१५)

मनःप्रसादः सौम्यत्वं मौनमात्मविनिग्रहः ।
भावसंशुद्धिरित्येतत्तपो मानसमुच्यते ॥

मन की प्रसन्नता, शांतभाव, भगवच्चिंतन करने का स्वभाव, मन का निग्रह और अंतःकरण के भावों की भलीभाँति पवित्रता - इस प्रकार यह मन-सम्बंधी तप कहा जाता है। (१६)

दातव्यमिति यद्दानं दीयतेऽनुपकारिणे ।
देशे काले च पात्रे च तद्दानं सात्त्विकं स्मृतम् ॥

दान देना ही कर्तव्य है - ऐसे भाव से जो दान देश तथा काल और पात्र के प्राप्त होने पर उपकार न करनेवाले के प्रति दिया जाता है, वह दान सात्त्विक कहा गया है। (२०)

अश्रद्धया हुतं दत्तं तपस्तप्तं कृतं च यत् ।
असदित्युच्यते पार्थ न च तत्प्रेत्य नो इह ॥

हे अर्जुन! बिना श्रद्धा के किया हुआ हवन, दिया हुआ दान व तपा हुआ तप और जो कुछ भी किया हुआ शुभ कर्म है वह समस्त 'असत्' - इस प्रकार कहा जाता है, इसलिए वह न तो इस लोक में लाभदायक है और न मरने के बाद ही। (२८)

✻

ब्रह्मचर्यासन

साधारणतया योगासन भोजन के बाद नहीं किये जाते, परंतु कुछ ऐसे आसन हैं जो भोजन के बाद भी किये जाते हैं। उन्हीं आसनों में से एक है ब्रह्मचर्यासन। यह आसन रात्रि-भोजन के बाद सोने से पहले करने से विशेष लाभ होता है।

ब्रह्मचर्यासन के नियमित अभ्यास से ब्रह्मचर्य-पालन में खूब सहायता मिलती है अर्थात् इसके अभ्यास से अखंड ब्रह्मचर्य की सिद्धि होती है। इसलिए योगियों ने इसका नाम 'ब्रह्मचर्यासन' रखा है।

विधि : जमीन पर घुटनों के बल बैठ जायें। तत्पश्चात् पैरों को दोनों तरफ फैलाकर हाथों को घुटनों पर रखें। नितम्ब और गुदा का भाग जमीन से लगा रहे। इस प्रकार शांत चित्त से बैठे रहें।

लाभ : इस आसन के अभ्यास से वीर्यवाहिनी नाड़ी का प्रवाह शीघ्र ही ऊर्ध्वगामी हो जाता है और सिवनी नाड़ी की उष्णता कम हो जाती है, जिससे यह आसन स्वप्नदोषादि बीमारियों को दूर करने में परम लाभकारी सिद्ध हुआ है।

जिन व्यक्तियों को बार-बार स्वप्नदोष होता है, उन्हें सोने से पहले पाँच से दस मिनट तक इस आसन का अभ्यास अवश्य करना चाहिए। इससे उपस्थ इन्द्रिय में काफी शक्ति आती है और एकाग्रता में भी वृद्धि होती है।

भागवत-परंपरा

✻ संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से ✻

ब्रह्माजी ने भगवान नारायण से कहा : ''परमात्मन् ! आप सबके आदि कारण होने से आदिपुरुष हैं, आपको नमस्कार है। प्रभो ! आपने मुझे सृष्टिकर्म में लगाया है, मगर मुझे भय है कि सृष्टिकाल में अत्यंत पापयुक्त रजोगुण आपकी स्मृति में कहीं बाधा न डालने लग जाय। अतः कृपा करके ऐसी कोई बात बतायें, जिससे आपकी याद बराबर बनी रहे।''

तब भगवान ने कहा : ''ब्रह्मन् ! तुम अपने मनोरथ की सिद्धि के लिए सदा ही 'श्रीमद्भागवत' का सेवन करते रहो।''

ब्रह्माजी 'श्रीमद्भागवत' के सेवन का उपदेश पाकर बड़े प्रसन्न हुए और उन्होंने भगवान श्रीकृष्ण की नित्य प्राप्ति के लिए 'श्रीमद्भागवत' का सप्ताह-पारायण किया। सप्ताह-यज्ञ की विधि से सात दिनों तक इसका सेवन करने से ब्रह्माजी के सभी मनोरथ पूर्ण हो गये।

'श्रीमद्भागवत' श्रवण-परंपरा में आता है कि शुकदेवजी ने राजा परीक्षित को, गोकर्ण ने धुंधुकारी को और सनकादि ऋषियों ने नारदजी को 'भागवत' की कथा सुनायी थी।

'भागवत' में १२ स्कंध हैं, उनमें १८,००० श्लोक हैं। इसका एक-एक स्कंध, एक-एक अध्याय अपने-आपमें पूर्ण है। अरे, एक-एक श्लोक, एक-एक शब्द भी पूर्ण है क्योंकि पूर्ण परमात्मा से इसकी परंपरा चली है और सबके हृदय में छुपे हुए उस पूर्ण को जगाने के लिए यह परंपरा चल रही है। इसलिए यह संपूर्ण रूप से पूर्ण है।

'श्रीमद्भागवत' के चार नाम हैं :

(१) महापुराण (२) परमहंस संहिता
(३) कल्पद्रुम (४) श्रीमद्भागवत

यह अत्यंत गोपनीय, रहस्यात्मक पुराण है। यह भगवत्स्वरूप का अनुभव करानेवाला और समस्त वेदों का सार है। संसार में फँसे हुए जो लोग घोर अज्ञानांधकार से पार जाना चाहते हैं, उनके लिए आध्यात्मिक तत्त्वों को प्रकाशित करनेवाला यह एक अद्वितीय दीपक है।

इसमें धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष - इन चारों पुरुषार्थों को सहज रूप से सिद्ध करने की युक्तियाँ बतायी गयी हैं।

विधि-विधान से भागवत-कथा का श्रवण करने से, जो धनाकांक्षी होता है उसे धन मिलता है, जो अकाल मृत्यु से बचना चाहता है उसकी अकाल मृत्यु कभी नहीं होती, जो अपयश से बचना चाहता है वह यश को पाता है और जो मुक्ति चाहता है उसे मुक्ति मिलती है। इस प्रकार जो जैसी-जैसी कामना से 'श्रीमद्भागवत' सुनता है, उसकी वैसी-वैसी कामना देर-सवेर पूर्ण होकर ही रहती है।

श्रीमद्भागवतं पुण्यमायुरारोग्यपुष्टिदम् ।
पठनाच्छ्रवणाद् वापि सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥

'यह पावन पुराण 'श्रीमद्भागवत' आयु, आरोग्य और पुष्टि देनेवाला है। इसका पाठ अथवा श्रवण करने से मनुष्य सब पापों से मुक्त हो जाता है।'

(श्रीमद्भागवत माहात्म्य :१८)

उत्तमानां स्वभावोऽयं परदुःखासहिष्णुता ।
स्वयं दुःखं च सम्प्राप्तं मन्यतेऽन्यस्य वार्यते ॥

'उत्तम पुरुषों का यह स्वभाव ही है कि वे दूसरों के दुःख को सहन नहीं कर पाते। अपने को दुःख प्राप्त हो जाय, इसे भी स्वीकार कर लेते हैं किंतु दूसरों के दुःख का निवारण ही करते हैं।'

अपने-आपको ही सुधार लो...

✲ संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से ✲

वक्त बीता जा रहा है। कब, किस समय क्या हो जाय कहना मुश्किल है। जिस शरीर को हम 'मैं' मानते हैं, वह शरीर भी सदा किसीका नहीं रहता। इसलिए अब तो नामजप की सच्ची कमाई करने लग जाओ, समय न गँवाओ।

शास्त्रों में भी लिखा है :

शतं विहाय भोक्तव्यं सहस्त्रं स्नानमाचरेत्।
लक्षं विहाय दातव्यं कोटि त्यक्त्वा हरिभजेत्॥

'सौ काम छोड़कर समय से भोजन कर लो, हजार काम छोड़कर स्नान कर लो, लाख काम छोड़कर दान-पुण्य कर लो और करोड़ काम छोड़कर परमात्मा की प्राप्ति में लग जाओ।'

लोग सोचते हैं : 'मेरी बेटी की शादी हो जाय... बेटे को नौकरी मिल जाय... मेरा इतना हो जाय... इतनी जवाबदारी निभा लूँ... फिर भगवान का भजन करूँगा।'

स्वामी माधवतीर्थ महाराज पहले रेलवे में ऑडिट ऑफिसर थे। उनका पूर्व का नाम मधुभाई था। वे साधु बनना चाहते थे लेकिन उन्हें बेटी की शादी की चिंता सताती थी। इसलिए वे सोचते कि 'बेटी की शादी के बाद संन्यास ले लूँगा।'

एक बार किसीने 'अप्रैल फूल' मनाने के लिए अखबार में छपवा दिया कि 'मधुभाई ने संन्यास ले लिया है।' जब वे ऑडिट करने के लिए मुंबई जा रहे थे, तब अचानक वह अखबार उनके हाथ में आ गया और वह खबर उन्होंने पढ़ी।

उन्होंने सोचा : 'अरे! भगवान ने मुझे शीघ्र इस दलदल से निकालने के लिए मित्रों को प्रेरित करके अखबार में यह छपवा दिया है।' तब मुंबई जाते ही उन्होंने नौकरी से त्यागपत्र दे दिया और संन्यास ले लिया। जब छलाँग मार दी, हो गये साधु तो बेटी की शादी भी आसानी से मिल-मालिक के कुटुंब में हो गयी। वे खुद चाहे कितना भी प्रयत्न करते तो भी बेटी को ऐसा कुटुंब नहीं मिलता। कहाँ तो बेटी की शादी की चिंता और कहाँ संन्यास ले लिया तो सब काम अपने-आप ही हो गये।

स्वामी माधवतीर्थ महाराज का शरीर तो अभी नहीं है, लेकिन उनसे मार्गदर्शन लेनेवाले, उनको गुरु माननेवाले लालजी महाराज तो अभी भी विद्यमान हैं। वे मेरे मित्र-संत हैं।

ऐसे ही मैं सोचता था कि 'मेरा भाई सिगरेट छोड़ दे, फिल्में देखना छोड़ दे, चाय पीना छोड़ दे, यह ठीक हो जाय- वह ठीक हो जाय फिर सब छोड़कर चला जाऊँगा।' मेरा भाई मुझे बोलता कि ''ले आओ सिगरेट।'' तब झख मारकर मुझे लाकर देनी पड़ती कि ''ले भाई! फूँक।'' पर जब हम घर छोड़कर गुरु के पास चले गये तब हमें कहना नहीं पड़ा, उसने खुद सिगरेट भी छोड़ी, फिल्में भी छोड़ीं और हमें मत्था टेकने और हमारा दर्शन करने के लिए कतार में भी लगने लगा।

हम लोग गलती क्या करते हैं कि दूसरों को सुधारना शुरू कर देते हैं। जो अपने सुधार से बचना चाहते हैं, वे दूसरों को सुधारने में लग जाते हैं। दूसरों को समझाने में अपनी ही शांति गायब होने लगती है।

आप पहले अपने को मजबूत बनाइये। अपने-आपको ही ठीक-से सुधार लीजिये, फिर दूसरों का अपने-आप भला हो जायेगा। आप तो केवल लग जाइये ईश्वरप्राप्ति में...

ऐसा कोई भगवान का प्यारा साधक है ही नहीं जिसके जीवन में विघ्न-बाधाएँ नहीं हैं।... और जिसके जीवन में विघ्न-बाधाएँ नहीं हैं वह साधक किस बात का? विघ्न-बाधाएँ होना तुम्हारे साधकपने की निशानी है, संसार से निराले मार्ग पर जानेवालों की निशानी है।

श्राद्ध की महिमा एवं विधि

संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन एवं शास्त्रों से

जीवात्मा का अगला जीवन पिछले संस्कारों से बनता है। अतः श्राद्ध करके यह भावना की जाती है कि उसका अगला जीवन अच्छा हो। श्रद्धा और मंत्र के मेल से पितरों की तृप्ति के निमित्त जो विधि होती है उसे 'श्राद्ध' कहते हैं। इसमें पिण्डदानादि श्रद्धा से दिये जाते हैं। जिन पितरों के प्रति हम कृतज्ञतापूर्वक श्रद्धा व्यक्त करते हैं, वे हमारे वर्तमान जीवन की अड़चनों को दूर करने में हमारी सहायता करते हैं।

'वराह पुराण' में श्राद्ध की विधि का वर्णन करते हुए मार्कण्डेयजी गौरमुख ब्राह्मण से कहते हैं :

''विप्रवर ! छहों वेदांगों को जाननेवाले, यज्ञानुष्ठान में तत्पर, भानजे, दौहित्र, श्वसुर, जामाता, मामा, तपस्वी ब्राह्मण, पंचाग्नि में तपनेवाले, शिष्य, सम्बंधी तथा अपने माता-पिता के प्रेमी ब्राह्मणों को श्राद्धकर्म के लिए नियुक्त करना चाहिए।''

'वायु पुराण' में आता है : ''मित्रघाती, स्वभाव से ही विकृत नखवाला, काले दाँतवाला, कन्यागामी, आग लगानेवाला, सोमरस (शराब आदि मादक द्रव्य) बेचनेवाला, जनसमाज में निंदित, चोर, चुगलखोर, ग्राम-पुरोहित, वेतन लेकर पढ़ानेवाला, पुनर्विवाहिता स्त्री का पति, माता-पिता का परित्याग करनेवाला, हीन वर्ण की संतान का पालन-पोषण करनेवाला, शूद्रा स्त्री का पति तथा मंदिर में पूजा करके जीविका चलानेवाला - ऐसा ब्राह्मण श्राद्ध के अवसर पर निमंत्रण देने योग्य नहीं है।''

❊ ब्राह्मण को निमंत्रित करने की विधि ❊

विचारशील पुरुष को चाहिए कि जिस दिन श्राद्ध करना हो उससे एक दिन पूर्व ही संयमी, श्रेष्ठ ब्राह्मणों को निमंत्रण दे दे। परंतु श्राद्ध के दिन कोई अनिमंत्रित तपस्वी ब्राह्मण घर पर पधारें तो उन्हें भी भोजन कराना चाहिए। श्राद्धकर्ता पुरुष को घर आये हुए ब्राह्मणों के चरण धोने चाहिए। फिर अपने हाथ धोकर उन्हें आचमन कराना चाहिए। तत्पश्चात् उन्हें आसन पर बिठाकर भोजन कराना चाहिए।

पितरों के निमित्त अयुग्म अर्थात् एक, तीन, पाँच, सात इत्यादि की संख्या में तथा देवताओं के निमित्त युग्म अर्थात् दो, चार, छः, आठ आदि की संख्या में ब्राह्मणों को भोजन कराने की व्यवस्था करनी चाहिए। देवताओं एवं पितरों, दोनों के निमित्त एक-एक ब्राह्मण को भोजन कराने का भी विधान है।

❊ श्राद्ध के समय हवन करने की विधि ❊

पुरुषप्रवर ! श्राद्ध के अवसर पर ब्राह्मण को भोजन कराने से पहले उनसे आज्ञा पाकर शाक और लवणहीन अन्न से अग्नि में तीन बार हवन करना चाहिए। उनमें **'अग्नये कव्यवाहनाय स्वाहा।'** इस मंत्र से पहली आहुति, **'सोमाय पितृमते स्वाहा।'** इससे दूसरी आहुति एवं **'वैवस्वताय स्वाहा।'** कहकर तीसरी आहुति देने का समुचित विधान है। तत्पश्चात् हवन से बचे हुए अन्न को थोड़ा-थोड़ा सभी ब्राह्मणों के पात्रों में परोसें।

❊ श्राद्ध में भोजन कराने का नियम ❊

भोजन के लिए बना अन्न अत्यंत मधुर, भोजनकर्ता की इच्छा के अनुसार तथा अच्छी प्रकार सिद्ध किया हुआ होना चाहिए। पात्रों में भोजन रखकर श्राद्धकर्ता को अत्यंत सुंदर एवं मधुर वाणी से कहना चाहिए कि 'हे महानुभावो ! अब आप लोग अपनी इच्छा के अनुसार भोजन करें।'

फिर क्रोध तथा उतावलेपन को छोड़कर उन्हें भक्तिपूर्वक भोजन परोसते रहना चाहिए।

श्राद्ध की विधि पूर्ण करने के बाद ब्राह्मण मौन होकर भोजन आरंभ करें। यदि उस समय कोई ब्राह्मण हँसता या बात करता है तो वह हविष्य राक्षसों का भाग हो जाता है। जब ब्राह्मण लोग भोजन करते हों तो उस समय श्राद्धकर्ता पुरुष श्रद्धापूर्वक भगवान नारायण का स्मरण करे।

※ अभिश्रवण : वैदिक श्राद्धमंत्र का पाठ ※

श्राद्ध में ब्राह्मणों को भोजन कराते समय रक्षक मंत्र का पाठ करके भूमि पर तिल बिखेर दें तथा उन द्विजश्रेष्ठों के रूप में अपने पितरों का ही चिंतन करें।

रक्षक मंत्र इस प्रकार है :

यज्ञेश्वरो यज्ञसमस्तनेता
भोक्ताऽव्ययात्मा हरिरीश्वरोऽत्र।
तत्संनिधानादपयान्तु सद्यो
रक्षांस्यशेषाण्यसुराश्च सर्वे ॥

'यहाँ संपूर्ण हव्य-फल के भोक्ता यज्ञेश्वर भगवान श्रीहरि विराजमान हैं। अतः उनकी सन्निधि के कारण समस्त राक्षस और असुरगण यहाँ से तुरंत भाग जायें।' **(वराह पुराण : १४.३२)**

ब्राह्मणों के भोजन के समय यह भावना करें कि 'इन ब्राह्मणों के शरीरों में स्थित मेरे पिता, पितामह और प्रपितामह आदि आज भोजन से तृप्त हो जायें।'

जैसे यहाँ से भेजे हुए रुपये लंदन में पाउण्ड, अमेरिका में डॉलर एवं जापान में येन के रूप में मिलते हैं, वैसे ही पितरों के लिए किये गये श्राद्ध का अन्न, श्राद्धकर्म का फल हमारे पितर जहाँ हैं, जैसे हैं, उनके अनुरूप उनको मिल जाता है। किंतु इसमें जिनके लिए श्राद्ध किया जा रहा हो, उनके नाम, उनके पिता के नाम एवं गोत्र के नाम का स्पष्ट उच्चारण होना चाहिए।

विष्णु पुराण (३.१६.१६) में आता है :

''श्रद्धायुक्त व्यक्तियों द्वारा नाम और गोत्र का उच्चारण करके दिया हुआ अन्न, पितृगण को वे जैसे आहार के योग्य होते हैं वैसा ही होकर मिलता है।''

※ अन्न आदि के वितरण का नियम ※

जब निमंत्रित ब्राह्मण भोजन से तृप्त हो जायें तो भूमि पर थोड़ा-सा अन्न डाल देना चाहिए। आचमन के लिए उन्हें एक-एक बार शुद्ध जल देना आवश्यक है। तदनंतर भलीभाँति तृप्त हुए ब्राह्मणों से आज्ञा लेकर भूमि पर उपस्थित सभी प्रकार के अन्न से पिण्डदान करने का विधान है। श्राद्ध के अंत में बलिवैश्वदेव का भी विधान है।

श्राद्ध के आरंभ में व अंत में निम्नांकित मंत्र का तीन बार जप करें :

देवताभ्यः पितृभ्यश्च महायोगिभ्य एव च।
नमः स्वधायै स्वाहायै नित्यमेव भवन्तु नः ॥

पिण्डदान करते समय एकाग्रचित्त होकर इसका जप करना चाहिए। इससे पितर शीघ्र ही आ जाते हैं और राक्षस भाग खड़े होते हैं। इस मंत्र से तीनों लोकों के पितर तृप्त होते हैं, यह पितरों को तारनेवाला है।

श्राद्ध के अंत में दान देते समय हाथ में काले तिल, जौ और कुशा के साथ पानी लेकर ब्राह्मण को दान देना चाहिए ताकि उसका शुभ फल पितरों तक पहुँच सके, नहीं तो असुर लोग हिस्सा ले जाते हैं। ब्राह्मण के हाथ में अक्षत (चावल) देकर यह मंत्र बोला-बुलवाया जाता है :

अक्षतं चास्तु मे पुण्यं शान्ति पुष्टिर्धृतिश्च मे।
यदिच्छ्रेयस् कर्मलोके तदस्तु सदा मम ॥

'मेरा पुण्य अक्षय हो। मुझे शांति, पुष्टि और धृति (धैर्य) प्राप्त हो। लोक में जो कल्याणकारी वस्तुएँ हैं; वे सदा मुझे मिलती रहें।'

उपरोक्त अर्थ की प्रार्थना भी की जा सकती है।

पितरों को श्रद्धा से ही बुलाया जा सकता है। केवल कर्मकाण्ड या वस्तुओं से काम नहीं होता। श्राद्ध की विधि में श्रद्धा और शुद्ध मंत्रोच्चारण के साथ पितरों का नाम, उनके पिता का नाम, उनके कुल-गोत्र का नाम लेकर उनका आवाहन किया जाता है।

श्राद्धकाल में ब्राह्मणों को अन्न देने में यदि कोई समर्थ न हो तो ब्राह्मणों को वन्य कंदमूल-फल, जंगली शाक एवं थोड़ी-सी दक्षिणा ही दे दे। यदि इतना करने में भी कोई समर्थ न हो तो किसी भी द्विजश्रेष्ठ को प्रणाम करके एक मुट्ठी काले तिल दे दे अथवा पितरों के निमित्त पृथ्वी पर भक्ति एवं नम्रतापूर्वक सात-आठ तिलों से युक्त जलांजलि

दे दे। यदि इसका भी अभाव हो तो कहीं-न-कहीं से एक दिन का घास लाकर प्रीति और श्रद्धापूर्वक पितरों के उद्देश्य से गौ को खिलाये एवं इन सभी वस्तुओं का अभाव होने पर वन में जाकर अपना कक्षमूल (बगल) सूर्य को दिखाता हुआ उच्च स्वर से यह कहे :

न मेऽस्ति वित्तं न धनं न चान्य-
च्छ्राद्धस्य योग्यं स्वपितॄन्नतोऽस्मि।
तृप्यन्तु भक्त्या पितरो मयैतौ
भुजौ ततौ वर्त्मनि मारुतस्य ॥

'मेरे पास श्राद्धकर्म के योग्य न धन-संपत्ति है और न कोई अन्य सामग्री। अतः मैं अपने पितरों को प्रणाम करता हूँ। वे मेरी भक्ति से ही तृप्तिलाभ करें। मैंने अपनी दोनों बाँहें आकाश में उठा रखी हैं।'

(वराह पुराण : १३.५८)

पितरों के कल्याणार्थ इन श्राद्ध के दिनों में श्राद्ध अवश्य करना चाहिए। पितरों को जो श्रद्धामय प्रसाद मिलता है उससे वे तृप्त होते हैं और अपने कुटुंबियों की मदद भी करते हैं।

ऊँचे-में-ऊँचा, सबसे बढ़िया श्राद्ध इन श्राद्धपक्ष की तिथियों में होता है। हमारे पूर्वज जिस तिथि में इस संसार से गये हैं, उसी तिथि को इस श्राद्धपक्ष में किया जानेवाला श्राद्ध सर्वश्रेष्ठ होता है।

हमारे जो सम्बंधी देव हो गये हैं, जिनको दूसरा शरीर नहीं मिला है वे पितृलोक में अथवा इधर-उधर विचरण करते हैं। उनके लिए पिण्डदान किया जाता है।

बच्चों एवं संन्यासियों के लिए पिण्डदान नहीं किया जाता। पिण्डदान उन्हींका होता है जिनको 'मैं-मेरे' की आसक्ति है। बच्चों की 'मैं-मेरे' की स्मृति और आसक्ति विकसित नहीं होती और संन्यास ले लेने पर शरीर को 'मैं' मानने की स्मृति संन्यासी को हटा देनी होती है। शरीर में उनकी आसक्ति नहीं होती इसलिए उनके लिए पिण्डदान नहीं किया जाता।

श्राद्ध में बाह्यरूप से जो चावल का पिण्ड बनाया ज़ाता है, वह केवल बाह्य कर्मकाण्ड नहीं है वरन् पिण्डदान के पीछे तात्त्विक ज्ञान भी छुपा है।

जो शरीर में नहीं रहे हैं, उनका नौ तत्त्वों का पिण्ड रहता है - चार अंतःकरण और पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ। उनका स्थूल पिण्ड नहीं रहता वरन् वायुमय पिण्ड रहता है। वे अपनी आकृति दिखा सकते हैं किंतु आप उन्हें छू नहीं सकते। दूर से ही वे आपकी दी हुई चीज को भावनात्मक रूप से ग्रहण करते हैं। वे दूर से ही आपको प्रेरणा आदि दे सकते हैं अथवा कोई-कोई स्वप्न में भी मार्गदर्शन देते हैं।

अगर पितरों के लिए किया गया पिण्डदान एवं श्राद्धकर्म व्यर्थ होता तो वे पितर स्वप्न में यह नहीं कहते कि 'हम दुःखी हैं। हमारे लिए पिण्डदान करो ताकि हमारी पिण्ड (शरीर) की आसक्ति छूटे और आगे की यात्रा हो, हमें दूसरा शरीर, दूसरा पिण्ड मिल सके।'

श्राद्ध इसीलिए किया जाता है कि पितर मंत्र एवं श्रद्धापूर्वक दी गयी श्राद्ध की वस्तुओं से तृप्त होकर हमारी भलाई करते हैं।

आप जिससे भी बात करते हैं उससे यदि प्रेम से, नम्रता से और उसके हित की बात करते हैं तो वह भी आपके साथ प्रेम से और आपके हित की ही बात करेगा। यदि आप सामनेवाले से काम करवाकर फिर उसकी ओर देखते तक नहीं तो वह भी आपकी ओर नहीं देखेगा या आपसे रुष्ट हो जायेगा। किसीके घर में ऐरे-गैरे, लूले-लँगड़े या माँ-बाप को दुःख देनेवाले बेटे पैदा होते हैं तो उसका कारण भी यही बताया जाता है कि जिन्होंने पितरों को तृप्त नहीं किया, उनका पूजन नहीं किया, अपने माँ-बाप को तृप्त नहीं किया उनके बच्चे भी उनको तृप्त करनेवाले नहीं होते।

श्री अरविंद घोष जब जेल में थे तब उन्होंने लिखा था : 'मुझे स्वामी विवेकानंद की आत्मा द्वारा प्रेरणा मिलती है और मैं १५ दिन तक महसूस करता रहा हूँ कि स्वामी विवेकानंद की आत्मा मुझे सूक्ष्म जगत की साधना का मार्गदर्शन देती है।'

जब उन्होंने परलोकगमन की साधना की, तब उन्होंने महसूस किया कि रामकृष्ण परमहंस का

अंतवाहक शरीर (उनकी आत्मा) भी उन्हें सहयोग देता है।

श्रद्धा से किये हुए पिण्डदान आदि कर्ता की मदद करते हैं। श्राद्ध का एक विशेष फायदा यह है कि 'मरने के बाद भी जीव का अस्तित्व रहता है' इस बात कीं स्मृति बनी रहती है। दूसरा लाभ यह है कि इसमें अपनी संपत्ति का सामाजीकरण होता है। गरीब-गुरबे आदि को भोजन मिलता है। दूसरे भोज-समारोहों में रजो-तमोगुण होता है जबकि श्राद्ध हेतु कराया गया भोजन धार्मिक भावना को बढ़ाता है तथा परलोक-सम्बंधी ज्ञान एवं भक्तिभाव को विकसित करता है।

भगवान श्रीराम ने भी अपने पिता दशरथ का श्राद्ध किया था और ब्रह्मज्ञानी महापुरुष एकनाथजी महाराज भी अपने पिता का श्राद्ध करते थे।

श्राद्धकाल में शरीर, द्रव्य, स्त्री, भूमि, मन, मंत्र और ब्राह्मण - ये सात चीजें विशेष शुद्ध होनी चाहिए। श्राद्ध में तीन बातों को ध्यान में रखना चाहिए : शुद्धि, अक्रोध और अत्वरा (जल्दबाजी नहीं करना)।

श्राद्ध हेतु कृषि और वाणिज्य का धन उत्तम, उपकार के बदले में दिया गया धन मध्यम और ब्याज एवं छल-कपट से कमाया गया धन अधम माना जाता है। उत्तम धन से देवताओं और पितरों को तृप्ति होती है, वे प्रसन्न होते हैं। मध्यम धन से मध्यम प्रसन्नता होती है और अधम धन से छोटी योनि (चाण्डाल आदि योनि) में गये हुए हमारे पितरों को तृप्ति मिलती है। ऐसा कहा गया है कि श्राद्ध में जो अन्न इधर-उधर डाला जाता है, उससे पशु-योनि एवं इतर योनियों में भटकते हुए हमारे कुल के लोगों को तृप्ति मिलती है।

श्राद्ध में मंत्र का बड़ा महत्त्व है। श्राद्ध में आपके द्वारा दी गयी वस्तु कितनी भी मूल्यवान क्यों न हो, लेकिन आपके द्वारा यदि मंत्र का उच्चारण ठीक न हो तो काम अस्त-व्यस्त हो जाता है। मंत्रोच्चारण शुद्ध होना चाहिए और जिसके निमित्त श्राद्ध करते हों उसके नाम का उच्चारण भी शुद्ध करना चाहिए।

मान लो, हमारे पिता चल बसे हैं और हमें तिथि का पता नहीं है तो भूली हुई तिथिवालों का श्राद्ध अमावस्या के दिन करना चाहिए क्योंकि हमारी अमावस्या पितरों का दोपहर का समय होता है और दोपहर में सभीको भूख लगती है।

श्राद्ध जैसे सत्कर्मों से अपना अंतःकरण तो पवित्र होता ही है, साथ ही अपने सम्बंधियों की भी उन्नति होती है।

हिन्दुओं में जब पत्नी संसार से जाती है तो पति को हाथ जोड़कर कहती है : ''मुझसे कुछ अपराध हो गया हो तो क्षमा करना और मेरी सद्गति के लिए आप प्रार्थना करना।'' अगर पति जाता है तो हाथ जोड़ते हुए पत्नी से कहता है : ''जाने-अनजाने में मैंने कभी कठोर व्यवहार किया हो तो मुझे क्षमा कर देना और मेरी सद्गति के लिए प्रार्थना करना।''

हम एक-दूसरे की सद्गति के लिए जीते-जी भी सोचते हैं, मरते समय भी सोचते हैं और मरने के बाद भी सोचते हैं।

श्राद्धकर्म करनेवालों में कृतज्ञता के संस्कार सहज में दृढ़ होते हैं, जो शरीर की मौत के बाद भी कल्याण का पथ प्रशस्त करते हैं। श्राद्धकर्म से देवता और पितर तृप्त होते हैं और श्राद्ध करनेवाले का अंतःकरण भी तृप्ति का अनुभव करता है। बूढ़े-बुजुर्गों ने आपकी उन्नति के लिए बहुत कुछ किया है, अतः उनकी सद्गति के लिए आप भी कुछ करेंगे तो आपके हृदय में भी तृप्ति और पूर्णता का अनुभव होगा।

औरंगजेब ने अपने पिता शाहजहाँ को कैद कर लिया था और पीने के लिए नपा-तुला पानी एक फूटी हुई मटकी में भेजता था। तब शाहजहाँ ने अपने बेटे को लिख भेजा :

''धन्य हैं वे हिन्दू जो अपने मृतक माता-पिता को भी खीर और हलुए-पूरी से तृप्त करते हैं और तू अपने जिंदा बाप को एक पानी की मटकी तक नहीं दे सकता ? तुझसे वे हिन्दू कई गुना अच्छे हैं, जो मृतक माता-पिता की भी सेवा कर लेते हैं।''

भारतीय संस्कृति अपने माता-पिता या कुटुंब-परिवार का ही हित नहीं, अपने समाज या देश का ही हित नहीं वरन् पूरे विश्व का हित चाहती है।

*

सबसे सरल है साक्षात्कार !

✲ संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से ✲

जिसको आप छोड़ नहीं सकते उसीको आप 'मैं' रूप में जान लो। इसीका नाम है साक्षात्कार। बस, सारे शास्त्रों, प्राणायामों, ध्यान, भजन एवं सारे मत-मजहब-पंथों का आखिरी व ऊँचा फल यही है कि जो मिट नहीं सकता उसको आप 'मैं' जान लीजिये और जो सदा रह नहीं सकता उसको आप प्रकृति का जान लीजिये।

परमात्मा शाश्वत है। उसको पाने के लिए नश्वर साधन पर्याप्त हैं क्या ? जो भी करोगे वह नश्वर ही होगा। आपका शरीर नश्वर, आपकी चीज-वस्तुएँ नश्वर, आपका पूजा-पाठ नश्वर... नश्वर से आप शाश्वत को खरीद सकते हैं क्या ? नश्वर तो नश्वर ही होता है।

यदि नश्वर से शाश्वत की रक्षा होती हो तो ऐसे शाश्वत को शाश्वत कहनेवाला पागल है। नश्वर शरीर और नश्वर सम्बंधों से परमात्मा की रक्षा करें - यह तो हो ही नहीं सकता।

कोई कहे कि 'शाश्वत से शाश्वत की रक्षा करो।' तो शाश्वत कितने होते हैं ? कुछ लोग बोर्ड पर बिंदु-बिंदु लगाकर बता देते हैं कि 'ये आत्माएँ हैं... ये आत्माएँ नरक में जाती हैं... ये आत्माएँ स्वर्ग में जाती हैं...' ऐसी मनःकल्पित बातें बता देते हैं। वास्तव में ऐसा नहीं होता।

आत्मा एक है, सत्ता एक है। जैसे - एक चाँद पानी से भरे अलग-अलग बर्तनों में अनेक दिखता है। यदि उनमें से एक बर्तन टूट जाय तो चाँद नष्ट हो जायेगा क्या ? जहाँ बर्तन होगा वहाँ चाँद दिखने लगेगा। चाँद तो वही-का-वही है। एक थाली में एक आकाश दिखेगा, हजार थालियाँ होंगी तो हजार आकाश दिखेंगे, लाख थालियों में लाख और करोड़ थालियों में करोड़ आकाश दिखेंगे किंतु वास्तव में आकाश एक ही है। ऐसे ही विविध अंतःकरणों में चिदाकाश परमात्मा एक ही है।

जिसकी सत्ता से आप 'मैं' बोलते हैं, उसीकी सत्ता से आपका शत्रु बोलता है : 'मैं तुझे तबाह कर दूँगा।' आपका मित्र बोलता है : 'फिक्र मत करना, मैं बैठा हूँ।' 'तबाह कर दूँगा' कहनेवाला भी वही 'मैं' और 'बैठा हूँ' कहनेवाला भी वही 'मैं'। 'बैठा हूँ' कहनेवाले के अंतःकरण में सहानुभूति के संस्कार हैं और 'तबाह कर दूँगा' कहनेवाले के अंतःकरण में कष्ट पहुँचाने के संस्कार हैं किंतु 'मैं' वही-का-वही है।

गीजर में भी वही विद्युत, फ्रिज में भी वही विद्युत... वैसे तो गीजर और फ्रिज में भिन्नता है। दोनों साधन अलग-अलग हैं, उनका उपयोग करने की रीति अलग-अलग है किंतु विद्युत तो वही-की-वही है। कसाईखाने और आश्रम या मंदिर में, दोनों जगह अपने-अपने कार्यानुसार अलग-अलग विद्युत-उपकरणों का उपयोग किया जाता है। कसाईखाने में हत्याएँ होती हैं और आश्रम या मंदिर में कइयों का जीवन सुधर जाता है लेकिन विद्युत तो दोनों जगह वही-की-वही है। भिन्न-भिन्न दिखाये वह प्रकृति है किंतु उस प्रकृति का आधार एक है - परमात्मा।

जैसे - सूर्य अपनी जगह पर है किंतु सबसे जुड़ा है। वह सारे वृक्षों, सारी जलराशियों एवं वर्षा का आधार है, सभी जीवों के जीवन का आधार है। ऐसा कौन-सा जीव है जो सूर्य से नहीं जुड़ा है ? सबमें सूर्यतत्त्व है और सब सूर्यमंडल में हैं। फिर भी सबके मरने से सूर्य नहीं मरता और सबके पैदा होने से सूर्य पैदा नहीं होता। ऐसे ही आत्मतत्त्व न पैदा होता है न मरता है। यदि उस आत्मा को पहचानने में लग जायें तो स्वयं आत्मस्वरूप हो जायें...

ईश्वर के साक्षात्कार जैसा सरल और कोई काम नहीं है। जो वास्तविक 'मैं' है उसमें टिकने के लिए ओंकार अथवा जिस देव में प्रीति है उसका गुरुप्रदत्त मंत्र (गुरुमंत्र) जपते-जपते उसके अर्थ में लीन होते जायें ताकि दूसरे अनर्थकारी संस्कार, अनर्थकारी आकर्षण हटते जायें।

यदि अनर्थकारी संस्कार ही सार दिखते हैं और सोचते हैं : 'भजन तो करेंगे किंतु जरा इतना कर लूँ... पेंशन आयेगी फिर आराम से भजन करूँगा।' तो पेंशन की पराधीनता रहेगी और बुढ़ापा आयेगा तो शरीर तो दुखेगा ही। फिर उसको ठीक करने में ही जीवन पूरा हो जायेगा। तो अब क्या करें ? अभी इसी समय आप तड़प जगाइये और अपने असली 'मैं' को पहचानिये।

बेठीक को ठीक करने का जो भूत घुसा है उसको निकालना ही परमात्म-प्राप्ति कहलाता है। जो सोचते हैं : 'जरा बेटी की शादी हो जाय... बेटा घर सँभालने के लायक हो जाय... जरा यह हो जाय... जरा वह हो जाय...' समझो, वे मूर्ख बालक की नाईं आकाश की रक्षा कर रहे हैं। संसार की विघ्न-बाधाएँ, परिस्थितियाँ अवश्यंभावी हैं। सम, शांत 'मैं' को पहचानना ही महान पौरुष है। कुटुंबी के शरीर के लिए तुम कितना भी करो, वह तो जीर्ण-शीर्ण और बीमार होता ही रहेगा। ऐसे ही कुछ लोग सोचते हैं : 'इन शरीरों की रक्षा करूँ फिर आराम से भजन करूँगा...' नहीं, बेटे या बेटी, पति या पत्नी का आत्मा तो शाश्वत है। उस शाश्वत आत्मा को जानने-पहचानने में लग जाओ।

हम लोग गलती यह करते हैं कि शरीर के लिए सारी सुविधाएँ जुटाकर फिर भजन करना चाहते हैं। यह तो सुविधाजनित सुख है, गुलामी का सुख है, आत्मा का सुख नहीं है। सुविधाजनित सुख तो यहाँ से ज्यादा स्वर्ग में है। किंतु वहाँ सुख भोगते-भोगते पुण्य क्षीण हो जाते हैं और फिर किसीके गर्भ में आना पड़ता है। जहाँ से सुख आता है यदि उस 'मैं' को एक बार पहचान लें तो फिर गर्भवास का दुःख सहना नहीं पड़ेगा।

*

विश्वास से प्रभुप्राप्ति

प्राचीन काल की एक घटना है :

एक बार एक किशोर ग्वाला अपनी गायों को चराने के लिए नदी के किनारे-किनारे उस जंगल में ले गया जहाँ हरी-भरी घास उगी थी। नदी के तट पर बरगद का एक विशाल वृक्ष था, जिसकी घनी एवं शीतल छाया में अनेक राहगीर अपनी थकान मिटाते थे। ग्वाला भी अपनी गायों को चरने के लिए जंगल में छोड़कर उस वृक्ष की शीतल छाया में आराम करने के लिए बैठ गया।

मध्याह्न के समय उसने देखा कि एक साधु कहीं से आया और उसने नदी में स्नान किया। इसके बाद वह उस विशाल वटवृक्ष की शीतल छाया में आसन बिछाकर बैठ गया। फिर उसने दोनों आँखें बंद करके, नाक दबाकर कुछ क्रियाएँ कीं। वह ग्वाला साधु के इन क्रियाक़लापों को ध्यानपूर्वक देखता रहा। जब संध्या-वंदन करके वह साधु वहाँ से ज़ाने की तैयारी करने लगा, तब उस ग्वाले ने साधु के पास जाकर इन यौगिक क्रियाओं के विषय में पूछा।

साधु ने कहा : ''ऐसा करके मैं भगवान से बातें कर रहा था।''

ग्वाला : ''क्या ऐसा करने से भगवान सचमुच में आते हैं और बातें करते हैं ?''

सिर हिलाकर ग्वाले के प्रश्न का उत्तर 'हाँ' में देते हुए वह साधु आगे बढ़ गया। उस साधु की इतनी ऊँची स्थिति नहीं थी कि वह भगवान से बातें कर सके, परंतु उसने उस भोले-भाले ग्वाले को प्रोत्साहन देने के लिए झूठ बोल दिया।

जब साधु वहाँ से चला गया, तब ग्वाला भी साधु जैसी ही क्रियाएँ करने लगा परंतु उसको भगवान का

कुछ पता नहीं चला। फिर भी वह दृढ़ निश्चय करके बैठ गया कि 'बस, आज भगवान के दर्शन करने ही हैं।' उसने सोचा कि 'वह साधु भगवान से बातें कर सकता है तो मैं क्यों नहीं कर सकता ?'

तब ग्वाले ने पुनः अपनी दोनों आँखें बंद कर लीं और नाक को जोर-से दबा लिया। ऐसा करने से उसकी हृदय-गति धीमी पड़ गयी तथा प्राण निकलने की नौबत आ गयी।

इधर भगवान शंकरजी का आसन डोलने लगा। उन्होंने ध्यान में देखा कि एक साधु की बातों में आकर एक किशोर ग्वाला भगवान को देखने के लिए हठपूर्वक आँखें बंद करके व नाक दबाकर बैठा है।

उस अबोध व निर्दोष ग्वाले को अकाल मृत्यु के मुँह में जाते देख भगवान शंकर उसके सामने प्रकट हो गये। भगवान ने ग्वाले से कहा :

''वत्स ! आँखें खोलो, मैं आ गया हूँ। मैं तुम पर बहुत प्रसन्न हूँ।''

ग्वाले ने आँखें बंद रखते हुए इशारे से पूछा कि 'आप कौन हैं ?'

भगवान : ''मैं वही भगवान हूँ जिसके लिए तुम आँखें बंद करके नाक दबाये बैठे हो।''

ग्वाले ने झट-से आँखें खोलीं और श्वास लेना शुरू किया। परंतु उसने कभी भगवान को देखा तो था नहीं। अतः वह कैसे पहचानता कि ये ही सचमुच में भगवान हैं। उसने भगवान को पेड़ के साथ रस्सी से बाँध दिया एवं साधु को बुलाने के लिए दौड़ता हुआ गया। साधु अभी थोड़ी ही दूर पहुँचा था। उसे रोककर ग्वाले ने सारी घटना कह सुनायी। साधु झटपट वहाँ पहुँचा परंतु जिनके जीवन में झूठ-कपट होता है, विश्वास की कमी होती है, साधन-भजन तो करते हैं परंतु लक्ष्यप्राप्ति के दृढ़ निश्चय से एवं प्रेम से नहीं करते उनको भगवान क्यों दिखेंगे ? उस साधु को भगवान नजर ही नहीं आ रहे थे जबकि ग्वाले को स्पष्ट दिखायी दे रहे थे।

साधु ने कहा : ''मुझे तो कुछ नजर नहीं आ रहा है।''

तब ग्वाले ने इसका कारण भगवान से पूछा। भगवान ने कहा : ''झूठ-कपट से कोई हजार वर्ष तक जप-तप करे फिर भी मुझे प्राप्त नहीं कर सकता, परंतु जो श्रद्धा, प्रीति और सच्चाई पूर्वक क्षणभर के लिए भी मुझे भजता है, मैं उसे शीघ्र दर्शन देता हूँ।''

भगवान ग्वाले से जो कह रहे थे वह साधु को भी सुनायी दे रहा था। तब अपने पूर्वकृत कर्मों के विषय में सोचकर उसकी आँखों से पश्चात्ताप के आँसू बहने लगे। वह फूट-फूटकर रोने लगा। इससे द्रवित होकर ग्वाले ने भगवान से उसे माफ करने के लिए प्रार्थना की।

ग्वाले की श्रद्धा व परदुःखकातरता के भाव से प्रसन्न होकर भगवान शंकर ने उस साधु को माफ कर दिया और उसे भी दर्शन दिये। फिर दोनों को आशीर्वाद देकर वे अंतर्धान हो गये।

उस साधारण साधु की बातों में आकर ग्वाले ने श्रद्धा, विश्वास एवं सच्चाई से प्रीतिपूर्वक भगवान का स्मरण किया तो भगवान ग्वाले के सामने स्वयं प्रकट हो गये। यही नहीं, उसके द्वारा तथाकथित साधु को भी भगवान के दर्शन हो गये। बाद में उस साधु ने ग्वाले को अपना गुरु मान लिया और दोनों साधना के मार्ग पर चलकर अंत में परमात्म-तत्त्व को उपलब्ध हो गये।

यदि एक अनपढ़ ग्वाला, साधारण साधु की देखा-देखी ही सही, विश्वासपूर्वक प्रभु को पुकारता है और उसे प्रभु के दर्शन हो जाते हैं तो फिर, यदि कोई व्यक्ति सच्चे उच्चकोटि के महापुरुष, ईश्वर को पाये हुए ब्रह्मवेत्ता सद्गुरु की आज्ञानुसार साधना करे तो उसे प्रभुप्राप्ति में देर कितनी ?

सेवाधारियों व सदस्यों के लिए विशेष सूचना

(१) कृपया अपना सदस्यता शुल्क या अन्य किसी भी प्रकार की नगद राशि रजिस्टर्ड या साधारण डाक द्वारा न भेजा करें। इस माध्यम से कोई भी राशि गुम होने पर आश्रम की जिम्मेदारी नहीं रहेगी। अतः अपनी राशि मनी ऑर्डर या ड्राफ्ट द्वारा ही भेजने की कृपा करें।

(२) 'ऋषि प्रसाद' के नये सदस्यों को सूचित किया जाता है कि आपकी सदस्यता की शुरुआत पत्रिका की उपलब्धता के अनुसार कार्यालय द्वारा निर्धारित की जायेगी।
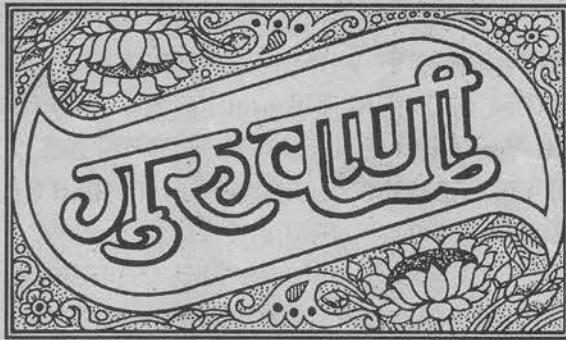
जीवन की तीन माँगें : सफलता, प्रसन्नता, निर्भीकता

२ फरवरी २००३ को अमदावाद आश्रम में निजानंद की मस्ती में सराबोर पूज्यश्री ने साधकों को संबोधित करते हुए कहा :

सबके जीवन में इन तीन चीजों की माँग है : सफलता, रसमय जीवन अर्थात् प्रसन्नता और निर्भीकता।

सफलता के लिए सभी लालायित रहते हैं। पढ़नेवाला विद्यार्थी, कमानेवाला कर्मचारी, इलाज करनेवाला वैद्य या डॉक्टर आदि सब चाहते हैं कि हम सफल रहें। चोर भी चोरी में सफल होना चाहता है, जज भी अपने क्षेत्र में सफल और प्रसिद्ध होना चाहता है। अपने-अपने विषय में सभी सफलता चाहते हैं, यह बिल्कुल पक्की बात है। किंतु उन्हें कभी सफलता मिलती है, कभी नहीं मिलती।

मनुष्य रसमय जीवन अर्थात् प्रसन्नता चाहता है। यदि उसको भीतर का रस नहीं मिलता तो फिर वह शराब से, जुए से या किसी और चीज से रस लेना चाहता है। और कुछ नहीं तो कुत्ते को छेड़कर या किसीको गाली देकर भी रस लेना चाहता है।

मनुष्य भय नहीं चाहता। जहाँ उसको भय लगता है, वहाँ वह नहीं जाता। कोई उसे डराता है तो उसके संग में उसे मजा नहीं आता।

इस प्रकार विफलता, शुष्कता या नीरसता और भय कोई नहीं चाहता।

सफलता, प्रसन्नता और निर्भीकता - ये तीन चीजें जिनके जीवन में जितने अधिक अंश में हैं, वे उतने ही अंश में सुखी और ऊँचे दिखेंगे तथा जिनके जीवन में ये जितने कम अंश में हैं, वे उतने ही अंश में दुःखी और छोटे दिखेंगे।

किसी भी विषय में सफलता तब मिलती है जब उस विषय में एकाग्रता होती है, उसके अनुकूल प्रयत्न किया जाता है और कुछ प्रारब्ध का योग होता है।

सफलता पाने की सूझबूझ भी एकाग्रता के बिना नहीं आती। एकाग्रता सफलता की जननी है। हमें ऐहिक जगत में सफल होना हो तो एकाग्रता चाहिए और भक्ति-योग-ज्ञान में सफल होना हो तो भी एकाग्रता चाहिए। जिनके जीवन में कुछ अंश में एकाग्रता है, वे ऊँचे पदों पर पहुँच जाते हैं। जिनमें एकाग्रता नहीं है, वे छोटे पदों पर ही रह जाते हैं। वे न चाहते हुए भी चपरासी होकर, गाय-भैंस चराकर, ठेले चलाकर अथवा मजदूरी करके सारी जिंदगी दुःख और गरीबी में बिता देते हैं।

एकाग्रता सब तपों का मूल है। **'तपःसु सर्वेषु एकाग्रता परं तपः ।'** स्वामी विवेकानंद ने कहा था कि ''अगर मुझे फिर से स्कूल-कॉलेज में जाना पड़े, पाठ्यपुस्तकें पढ़नी पड़ें तो मैं केवल दो विषयों पर ही अपना समय-शक्ति लगाऊँगा - एक तो एकाग्रता और दूसरा अनासक्ति।''

एकाग्रता में सहायक है - मौन। गाँधीजी सोमवार को मौन रखते थे। उस दिन वे बड़े अच्छे निर्णय ले पाते थे तथा और दिनों की अपेक्षा उस दिन ज्यादा काम कर पाते थे। हम जब हिमालय में अथवा और कहीं एकांत में होते हैं तब हमारे द्वारा और भी अच्छे काम होते हैं।

मौन के अलावा एकाग्रता में सहायक हैं - सात्त्विक आहार, सत्साहित्य और सत्कार्य।

गुरु या इष्ट की मूर्ति को एकटक देखकर भी आप एकाग्रता का अभ्यास कर सकते हैं। निर्धन-धनी, सभी लोग यह प्रयोग कर सकते हैं। अगर इसके साथ आप भगवन्नाम-जप भी करते हैं तो हृदय में परमात्मा के आनंद का आविर्भाव होगा, प्रसन्नता आयेगी। प्रसन्नता शोक और नीरसता को हर लेती है तथा सुख-आनंद को भर देती है।

सरसता सभीको चाहिए। नीरसता किसीको

पसंद नहीं है। नीरस जीवन बोझिल हो जाता है। नीरस मनुष्य ही सिगरेट और पानमसाले से, शराब व सुंदरी से रस लेगा। नीरस मनुष्य ही व्यसनों का गुलाम बनता है। रसीले चित्तवाला अपने-आपमें तृप्त रहता है।

बिना रस के नीरसता नहीं जाती, प्रसन्नता नहीं आती और स्नेहमय-सुखमय जीवन का स्वाद नहीं मिलता। नीरसता की निवृत्ति और प्रसन्नता की प्राप्ति रसमय जीवन से होती है। जीवन को रसमय बनाने का सुंदर उपाय यह है कि रसस्वरूप आत्मा-परमात्मा का ज्ञान सुनकर उसका चिंतन करें। **रसो वै सः वैश्वानरः।**

सफलता के लिए एकाग्रता जरूरी है किंतु एकाग्रता के समय चित्त शुष्क नहीं, रसमय होना चाहिए। श्रीकृष्ण का जीवन इतना रसमय था कि उनके दर्शन के लिए ग्वाल-गोपियाँ इंतजार करते रहते थे। श्रीकृष्ण की बंसी सुनकर गौएँ तक चारा चरना छोड़ देतीं, बछड़े दूध पीना भूल जाते और श्रीकृष्ण को निहारने लगते!

आप रसमय होंगे तब आपकी आभा भी सरस होगी। कुछ लोग ऐसे होते हैं जो आपसे मिलते हैं तो आपको लगता है कि 'इनसे जान छूटे।' कुछ ऐसे पवित्रात्मा होते हैं जो भले आपको न बुलायें, किंतु आप उनकी ओर खिंचे चले जाते हैं। जैसे - नन्हा-मुन्ना बालक खेल रहा है... चाहे वह किसीका भी बच्चा हो, लेकिन प्यारा लगता है। आप बड़े साहब हैं और वह मासूम नन्हा, फिर भी आपको वह रसीला लगता है। आप रेलगाड़ी में या किसी अन्य जगह पर हैं और किसीका नन्हा-मुन्ना बालक आपको दिखता है तो आप उसे प्यार करने लगते हैं। आपसे ये हरकतें क्यों होने लगती हैं ?- रस के लिए। जब आदमी को भीतर से रस नहीं मिलता, तब वह बाहर से रसप्रद परिस्थितियाँ सर्जित करके भी रस लेने के लिए मजदूरी करता रहता है।

कर्मजन्य रस की अपेक्षा भावजन्य रस और भावजन्य रस की अपेक्षा विचारजन्य रस ऊँचा है। विचारजन्य रस की अपेक्षा भी वास्तविक रस अर्थात् 'अपना ब्रह्म-परमात्मा तो रसस्वरूप ही है।' ऐसा साक्षात्कार करना सर्वोपरि है।

व्यक्ति जितना निर्दोष और सच्चा होगा उतना निर्भीक होगा और जितना बेईमान होगा उतना ही भयभीत होगा। यदि कोई बोले कि 'गुंडे-डाकू तो बड़े निर्भीक होते हैं लेकिन वे सच्चे तो नहीं होते।' तो वे निर्भीक नहीं होते, निर्भीकता का दम मारते हैं। अंदर से वे ज्यादा भयभीत होते हैं।

रावण कितना बली था! किंतु उसके मन में कपट था। अतः जब वह सीताजी का हरण करने आया, तब पत्तों के खड़कनेमात्र से काँपने लगता था। बेईमान आदमी निर्भीक नहीं हो सकता। वह क्रूर हो सकता है, निष्ठुर हो सकता है परंतु निर्भीक नहीं हो सकता।

क्रूरता और निर्भीकता में अंतर समझना पड़ेगा। क्रूर व्यक्ति की क्रूरता की आपको पहचान नहीं है इसलिए उसको आप निर्भीक मान लेते हैं। क्रूर, बेईमान, कपटी और दगाबाज व्यक्ति निर्भीक नहीं हो सकता।

जब आपके हृदय में किसीके लिए कपट होता है और आप उससे बात करते हो तो आपकी आँखें चंचल हो जायेंगी व हृदय की धड़कनें बढ़ जायेंगी। यदि आपके हृदय में स्वार्थ या कपट नहीं है और फिर किसीसे बात करोगे तो हृदय में निर्भीकता महसूस करोगे। निर्भीकता से मिले हुए सामर्थ्य का सदुपयोग होगा।

अब आप सार बात समझ लेना कि हमें सुखी और सफल जीवन के लिए एकाग्रता का महत्त्व समझना चाहिए। एकाग्रता के साथ रसमय जीवन की आवश्यकता का महत्त्व जानना चाहिए। रसमय जीवन के साथ शुद्ध-सात्त्विक जीवन, सच्चाईपूर्ण जीवन जीकर निर्भीकता का सुख पाना चाहिए।

गीता प्रश्नोत्तरी के पिछले अंक के प्रश्नों के उत्तर

१८१. भगवान श्रीकृष्ण का।
१८२. पृथ्वी, जल, अग्नि (तेज), वायु, आकाश।
१८३. स्वर्ग में जाता है। १८४. अस्थायी।
१८५. नहीं। १८६. धर्म के पक्ष में। १८७. मोहवश।
१८८. बंधन-मुक्ति। १८९. सम्मोह से।
१९०. सात सौ। १९१. नरक एवं नीच योनियों में।

श्री योगवाशिष्ठ महारामायण

मन के जीते जीत

*** संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से ***

'श्री योगवाशिष्ठ महारामायण' के 'उपशम प्रकरण' के आठवें सर्ग में यह कथा आती है :

एक बार राजा जनक अपने मंत्री-टहलुओं के साथ अरण्य-विहार करने के लिए निकले। विहार करते-करते वे मंत्री-टहलुओं को दूर छोड़कर एक विशाल वृक्ष के नीचे जा बैठे।

दैवयोग से कहो या राजा के पुण्यपुंज के प्रभाव से कहो, उनको सिद्धों की गीता (ज्ञानचर्चा) सुनने का अवसर मिला। वहाँ अदृष्ट सिद्ध विचर रहे थे। जैसे हम लोगों का शरीर दिखता है वैसे उनका स्थूल शरीर नहीं दिखता। वे सिद्ध आपस में चर्चा कर रहे थे।

मनुष्य का मन जहाँ रमण करता है उसी विषय की चर्चा उसे सुहावनी लगती है। मनुष्य का मन जाग्रत में कहाँ रमण करता है यह बात जाननी हो तो देखो कि उसे स्वप्न किस प्रकार के आते हैं ? जाग्रत में गहराई में मन जहाँ रमण करता है, स्वप्न प्रायः उसी प्रकार के आते हैं, स्वाभाविक बातचीत में भी वह बात प्रायः आ ही जाती है। किसी इष्ट में, भगवान में, गुरु में, साधन में मन रमा है तो बात करते-करते उनकी बात निकल ही आती है। साधक को ध्यान देना चाहिए कि वार्तालाप ऐसा हो जो उसके साधन के रास्ते में मददरूप हो जाय।

चर्चा करते हुए प्रथम सिद्ध ने कहा : ''यह द्रष्टा जो पुरुष है और दृश्य जो जगत है उस द्रष्टा तथा दृश्य के मिलाप में जो बुद्धि में निश्चित आनंद होता है और इष्ट के संयोग एवं अनिष्ट के वियोग का जो आनंद चित्त में दृढ़ होता है - वह आनंद आत्मतत्त्व से उदय होता है। उस आत्मा की हम उपासना करते हैं।''

दूसरे सिद्ध ने कहा : ''द्रष्टा, दर्शन और दृश्य का वासनासहित त्याग करो। जो दर्शन से प्रथम प्रकाशरूप है और जिसके प्रकाश से ये तीनों प्रकाशते हैं, उस आत्मा की हम उपासना करते हैं।''

तीसरे सिद्ध ने कहा : ''जो निराभास और निर्मल है, जिसमें मन का अभाव है अर्थात् अद्वैतरूप है, उसकी हम उपासना करते हैं।''

चौथे सिद्ध ने कहा : ''जो द्रष्टा व दृश्य इन दोनों के मध्य में है और अस्ति एवं नास्ति - दोनों पक्षों से रहित प्रकाशरूप सत्ता है और सूर्य आदि को भी प्रकाशता है, उस आत्मा की हम उपासना करते हैं।''

पाँचवें सिद्ध ने कहा : ''जो ईश्वर सकार और हकार है अर्थात् सकार जिसके आदि में है और हकार जिसके अंत में है, वह अंत से रहित, आनंदस्वरूप, अनंत, शिवस्वरूप, परमात्मा सर्व जीवों के हृदय में स्थित है और जिसकी सत्ता से व्यक्ति का अहं 'मैं' रूप में उच्चारित होता है, उस आत्मा की हम उपासना करते हैं।''

छठे सिद्ध ने कहा : ''हृदय में स्थित ईश्वर को त्यागकर जो और देव को पाने का यत्न करते हैं, वे पुरुष कौस्तुभमणि को त्यागकर अन्य रत्नों की वांछा करते हैं।''

सातवें सिद्ध ने कहा : ''जो सब आशाओं को त्यागता है उसको उत्तम फल प्राप्त होता है। जब आशारूपी विष की बेल मूलसहित नष्ट हो जाती है, तब जन्म-मरण आदि दुःख नष्ट हो जाते हैं और फिर नहीं उपजते। जो पदार्थों को अत्यंत विरसरूप जानता है और फिर उनमें आशा बाँधता है, वह दुर्बुद्धि गर्दभ है, मनुष्य नहीं। जिन-जिन विषयों की ओर दृष्टि उठती है उनको विवेक से नष्ट करो, जैसे इंद्र ने वज्र से पर्वतों को नष्ट किया था। जब इस प्रकार शुद्ध आचरण करोगे तब समभाव को प्राप्त होओगे

और उससे मन का उपशम होकर तुम अक्षय, अविनाशी आत्मपद को पाओगे।''

सिद्धों के वचन सुनकर राजा जनक का विवेक जगा। वे अपने महल में आकर झरोखे में से संसार की चंचल गति को देखकर विलाप करने लगे और अपने मन को समझाने लगे :

'हे मेरे मन ! तू भी उस परमेश्वर-स्वभाव में आ जा। बाहर कब तक भटकेगा ? आँख, कान, नाक, त्वचा आदि इन्द्रियों से मिलकर तू कब तक सुख के लिए पागलों की नाईं भटकता रहेगा ? ऐसा करते-करते तो कई युग बीत गये, मेरे मन ! अब तो तू अपने आत्मसुख में आ जा।'

कभी राजा जनक का मन शांत होता, कभी इधर-उधर भागता। वे अपने मन को फिर से समझाते : 'हे मेरे मन ! अच्छा जा, तुझे जहाँ भी जाना है, तू जा। अब मेरा तेरे साथ कोई लेना-देना नहीं है। मैं तेरी दौड़ को देखनेवाला तुझसे न्यारा हूँ।'

इस प्रकार का चिंतन करते-करते जनक शांत हो गये। अब न इष्ट की प्राप्ति में उन्हें हर्ष रहा और न ही अनिष्ट की प्राप्ति से द्वेष, वरन् वे सदा-सर्वदा सहज व्यवहार करके जीवन्मुक्त हो विचरने लगे।

जैसे राजा जनक ने अपने मन को समझाया, उसी प्रकार आप भी अपने मन को समझाकर उसे जीत सकते हो। जिसने अपना मन जीत लिया समझो, उसने पूरे जगत को जीत लिया। वह राजाओं का राजा है, सम्राटों का सम्राट है।

इसीलिए कहा गया है :

मन के हारे हार है, मन के जीते जीत।
मन से ही तो पाइये, परब्रह्म की प्रीत॥

*

महत्त्वपूर्ण निवेदन

सदस्यों के डाक-पते में परिवर्तन अगले अंक के बाद के अंक से कार्यान्वित होगा। जो सदस्य १४३वें अंक से अपना पता बदलवाना चाहते हैं, वे कृपया सितंबर २००४ के अंत तक अपना नया पता भेज दें।

परमात्म-प्राप्ति के सोपान

*** संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से ***

'श्री योगवाशिष्ठ महारामायण' में वशिष्ठ महाराज कहते हैं : ''हे रामजी ! आत्मतत्त्व का साक्षात्कार होता है, तब विचार से प्रयोजन नहीं रहता। सबमें, सब प्रकार से, सब काल आत्मा की भावना करो अथवा जितना दृश्यभाव है सो सब त्याग दो तो जो शेष रहेगा वह भास आयेगा।''

सारा संसार मिथ्या और असार है। बाकी जो सार है उस पर बुद्धि टिकेगी तो कल्याण हो जायेगा। सबमें छुपा हुआ परमेश्वर एक है अथवा तो 'कुछ नहीं है... कुछ नहीं है...' ऐसा जो कह रहा है वही शेष है, उसीमें अपनी बुद्धि को लगाओ। अपनी बुद्धि को आत्मविषयिणी बना लो। आनंद-ही-आनंद... ॐ आनंद... ॐ शांति... ॐ माधुर्य... मधुर आनंद... ॐ... ॐ...

जब तक संसार की कोई भी इच्छा है, तब तक समझना कि हम बंधन में हैं। संसारी इच्छाएँ छूटीं तो मुक्तात्मा हो जाओगे। इसलिए संसार का पसारा करने की इच्छा मत करो।

बहुत पसारा मत करो, कर थोड़े की आस।
बहुत पसारा जिन किया, वे भी गये निरास॥

जैसे हाथी दलदल में फँसता है और ज्यों निकलना चाहे त्यों ज्यादा धँसता जाता है, ऐसे ही 'यह करूँ... वह करूँ... इतना कर लूँ... इतना पा लूँ...' करते-करते इंसान संसार में ज्यादा फँसता चला जाता है। जब मौत आकर गला दबोच लेती है, तब सब किया-कराया यहीं रह जाता है... चिता पर रुपये-पैसे, गहने-गाँठें, मकान-दुकान लेकर कोई

नहीं जाता, सब छोड़कर ही जाना पड़ता है।

जिसे छोड़कर जाना पड़ेगा उसीकी चिंता में पच रहे हो। भगवान को पाने का तीव्र संकल्प करके संसार की इच्छा-वासना छोड़ दो। कोई इच्छा नहीं, केवल भगवान को पा लो; बस, फिर कोई तनाव (टेंशन) नहीं, कोई दुःख नहीं, कोई चिंता नहीं, कोई शोक नहीं...

तरति शोकं आत्मवित्। आत्मवेत्ता सारे शोकों से तर जाता है, सारे दुःखों से तर जाता है। **तत्र कः शोकः को मोहः ?** जो केवल एक आत्मा को ही सब जगह देखता है, एक भगवान को ही जानता है उसके लिए शोक कहाँ, मोह कहाँ ?

कभी न छूटे पिण्ड दुःखों से,
जिसे ब्रह्म का ज्ञान नहीं।

चाहे जितना कमा लो, कितना भी पा लो, दुनिया का कितना भी जान लो लेकिन तब तक दुःखों का अंत नहीं होता, जब तक उस सर्वेश्वर आत्मा को नहीं जाना।

सर्वेश्वर आत्मा को पाना, जानना कठिन भी नहीं है लेकिन उधर की यात्रा नहीं की इसलिए कठिन लगता है। जैसे जिसने पढ़ने-लिखने का अभ्यास नहीं किया, उसके लिए पढ़ना-लिखना कठिन है; जिसे गाड़ी चलाने का अभ्यास नहीं है, उसके लिए गाड़ी चलाना कठिन है। बाकी हजारों-लाखों लोग शिक्षित हैं, हजारों-लाखों लोग गाड़ी चलाते हैं उन्हें कठिन नहीं लगता। ऐसे ही करोड़ों लोगों का अंतरात्मा ज्यों-का-त्यों है जैसा ज्ञानी का है, लेकिन ज्ञानी महापुरुष ने उसको जान लिया है।

जैसे केसरी सिंह बलपूर्वक पिंजरे से निकल जाता है अथवा पथिक रास्ते के लुटेरों से अपना धन बचाकर खिसक जाता है, ऐसे ही संसार की मोह-माया से और संसार के आकर्षणरूपी लुटेरों से अपनी जान बचाकर जो परमात्मा में चित्त लगाता है, वह व्यक्ति यहाँ तो सुखी रहता ही है, मरने के बाद भी परम सुखस्वरूप परमात्मा में एकाकार हो जाता है।

जिसको इसी जन्म में मुक्त होना है, उसे चाहिए कि अपनी देह से पृथक्, देह के द्रष्टा, परमेश्वरीय स्वभाव की स्मृति रखे। उसीका श्रवण करे, उसीका मनन करे, उसीका चिंतन करे, उसीका ध्यान करे।

जो अपने ईश्वरीय तत्त्व को पाना चाहता है, उसे चाहिए कि सदैव सार्थक काम करे, निःस्वार्थ काम करे। निरर्थक काम न करे। निःस्वार्थ-निष्काम कर्म एवं निरर्थक कर्म में फर्क है। निष्काम कर्म अर्थात् फल की आकांक्षा से रहित परहित के कार्य। निरर्थक कर्म अर्थात् निष्प्रयोजन कर्म। जिसके जीवन में निष्काम कर्म नहीं है, सेवा नहीं है उसका विकास भी नहीं होता। चाहे संसार में रहो, चाहे भगवान के रास्ते पर चलो लेकिन विकास के लिए पहली शर्त है - सेवा।

सेवा से अंतःकरण शुद्ध होता है और राग-द्वेष से मलिन व अनर्थकारी होता है। अतः सबसे न्याययुक्त व्यवहार करना चाहिए। 'सबमें अपना परमात्मा है, सबका कल्याण हो, सबका मंगल हो, सबकी भलाई हो।' इस भाव से साधक का हृदय शीघ्र शुद्ध होता है। शुद्ध हृदय में ही ज्ञान की प्यास जगती है, शुद्ध हृदय में ही परमात्मा के प्यारे संतों के अनुभव को अपना अनुभव बनाने की योग्यता आती है और शुद्ध हृदय में ही ज्ञान का प्रकाश होता है।

दूसरी बात है कि बाह्य दृश्य-जगत की परिवर्तनशीलता, नश्वरता और क्षणभंगुरता को जानकर उससे उपराम हो जाओ। संसार स्वप्नमात्र है। 'छः महीने पहले वह ऐसा था - वैसा था...' अब देखो तो स्वप्न... ६ दिन पहले की बातें देखो तो अब स्वप्न... सब स्वप्न में सरकता जा रहा है... ऐसा समझकर ईश्वर में मन लगायें।

उमा कहउँ मैं अनुभव अपना।
सत हरि भजनु जगत सब सपना॥

तीसरी बात है, आत्मज्ञानी गुरु की आज्ञा का तत्परता से पालन। जो आत्मसाक्षात्कारी गुरु के सिद्धांत का एवं उनकी आज्ञा का तत्परतापूर्वक पालन करता है, वही शिष्य अपना कल्याण कर सकता है।

जो अपने जीवन में निष्काम कर्म एवं प्रीतिपूर्वक भगवत्स्मरण करता है, संसार को स्वप्न मानकर उसकी वासना का त्याग करता है तथा आत्मज्ञानी गुरु की आज्ञा का तत्परतापूर्वक पालन करता है, वह इसी जन्म में मुक्ति पाकर सदा के लिए सब दुःखों से, सब चिंताओं से, सब शोकों से पार हो जाता है।

माया से परे...

✻ संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से ✻

भगवान वेदव्यासजी ने सार बात कही है : दो अक्षरों से बंधन है और तीन अक्षरों से मुक्ति। 'मम' से बंधन है और 'निर्मम' से मुक्ति। हम शरीर को 'मैं' मानते हैं तो 'मम' पक्का होता है, किंतु आत्मा को 'मैं' मानें और मन को आत्मा में विश्रांति दिलायें तो असत् 'मैं' की पोल खुल जाती है।

एक बार श्रीरामजी के चरणों में प्रणाम करते हुए लक्ष्मणजी ने पूछा : ''प्रभु ! कहते हैं कि माया बड़ी दुष्ट है। वह माया कैसी है ? कहाँ रहती है ?''

श्रीरामजी ने कहा : ''शरीर को 'मैं' और उसकी वस्तुओं को 'मेरी' मानना, यही माया है। यह माया ही जीव को अपने वश में करके उसका जीवन पूरा कर देती है।''

मैं अरु मोर तोर तैं माया ।
जेहिं बस कीन्हे जीव निकाया ॥

(श्री रा.मानस, अर. का. : १४.१)

वास्तविकता तो यह है कि हम अपने को छोड़ नहीं सकते और मिले हुए को सदा रख नहीं सकते। केवल इतना समझ लें तो काम बन जाय। आप अपने को त्याग नहीं सकते। जिसको त्याग नहीं सकते वह ईश्वर है और जिसको सदा रख नहीं सकते वह माया है, आकृति है।

सारे देवता नाराज हो जायें, सारे दैत्य नाराज हो जायें, अरे ! भगवान भी नाराज हो जायें तो भी वे आपसे परमात्मा को नहीं छीन सकते।

भगवान नाराज हो जायें, देवता नाराज हो जायें तो आपसे क्या छीनेंगे ? मिली हुई वस्तु ही तो छीनेंगे अथवा तो नरक में डाल देंगे । नरक में किसको डालेंगे ? आपके भोग-शरीर को ही न ! शरीर से पहले आप थे। जो नरक पहले नहीं था, बाद में दिया गया है वह कब तक टिकेगा ? यातनाएँ भोगकर घोर नारकीय जीवों का नरक भी छूट जाता है। ऐसे ही स्वर्ग भी मिल गया तो कब तक टिकेगा ?

एक समय अष्टावक्र महाराज ने तप किया, जिससे ब्रह्माजी प्रकट हुए। ब्रह्माजी ने उन्हें वरदान माँगने के लिए कहा। अष्टावक्रजी ने पूछा : ''आप क्या दे सकते हैं ?''

''जो चाहो, दे सकता हूँ।''

''क्या दी हुई चीज सदा रहेगी ?''

''सदा तो हमारा शरीर भी नहीं रहता तो हमारी दी हुई चीज सदा कैसे रहेगी ? अष्टावक्र ! तुम तो ज्ञानी हो।''

''फिर आपसे क्या लें ? आपसे यह समझ ही लेनी थी, धन्यवाद !''

फिर अष्टावक्रजी ने विष्णुजी का आवाहन किया। उनकी एकाग्रता के प्रभाव से विष्णुजी आये और बोले :

''कहो, योगिराज ! कैसे स्मरण किया ?''

''प्रभु ! आपका स्वागत है । व्यवहार के नाते हम जीवरूप में हैं और आप आदिनारायण-स्वरूप में हैं। आप पालनकर्ता देव हैं। आप किसका पालन कर सकते हैं ?''

''शरीरधारियों का।''

''शरीरधारियों का शरीर तो सदा नहीं रहता।''

''पालन भी ऐसा ही है।''

''क्या आप मेरा पालन कर सकते हैं ?''

''अष्टावक्र ! तुम तो एक, अखंड, सत्यवस्तु हो। अपने को आत्मरूप से जानते हो। आत्मा का पालन कौन कर सकता है ? क्या अनात्मा करेगा ? आत्मा के पालन-पोषण के लिए क्या चाहिए ? आकाश सबको ठौर देता है, आकाश को ठौर कौन दे सकता है ? अष्टावक्र ! तुम तो मेरा ही स्वरूप हो, ब्रह्मस्वरूप हो।''

इस प्रकार थोड़ी देर आत्मज्ञान की चर्चा हुई

और विष्णुजी अंतर्धान हो गये। फिर अष्टावक्रजी ने शिवजी का आवाहन किया। शिवजी प्रकट हुए।

अष्टावक्रजी : ''प्रभु ! आप तो प्रलयकर्ता देव हैं। आप मेरा प्रलय कर दीजिये।''

शिवजी : ''अष्टावक्र ! तुम्हारे शरीर का प्रलय हो सकता है लेकिन तुम्हारा प्रलय कौन कर सकता है ? प्रलय के बाद भी प्रलय को जाननेवाले तुम तो रहते हो।''

''मेरा प्रलय नहीं होता ?''

''नहीं। यह तो तुम जानते ही हो, ऋषिवर !''

''मैं जानता हूँ तभी तो आपको आना पड़ा।''

''हम आये और गये यह बात सच्ची है क्या, अष्टावक्र ?''

''नहीं, प्रभु ! यह तो आपकी आकृति प्रकट हुई है, फिर लीन हो जायेगी । आप तो सर्वत्र ओतप्रोत हैं। आप नहीं होते तो आकृति भी प्रकट नहीं होती। आप सत्तारूप से यहाँ पहले भी थे ही। जहाँ आकाश नहीं है वहाँ मकान नहीं बन सकता, वहाँ कोई पशु-पक्षी या मनुष्य नहीं रह सकता । आकाश है तभी सब हैं । ऐसे ही आप हैं तभी आपका श्रीविग्रह है। आप आकाश से भी सूक्ष्मतम चिदानंद हैं । अष्टावक्र भी आप ही हैं।''

''सब तुम्हींमें हैं, अष्टावक्र !''

''नहीं, प्रभु ! सब आपमें ही हैं। मेरे जैसी कई अष्टावक्ररूपी तरंगें पैदा हो-होकर लीन हो जाती हैं आप आत्मसमुद्र में।''

दोनों परम शांत हो गये। ऐसा है परमात्मा का स्वरूप ! फिर वहाँ सब कुछ नहींवत् हो जाता है। वाणी मौन हो जाती है... निःसंकल्पावस्था...

मत करो वर्णन हर बेअंत है ।
क्या जाने वह कैसो है ?

उस परमात्म-अवस्था का वर्णन संभव ही नहीं है। उसे तो वही जान सकता है जो 'मैं' और 'मेरे' की माया से पार हो जाता है और माया से पार करता है - आत्मानुसंधान, मायातीत महेश्वर का ज्ञान, उसकी प्रीतिपूर्वक स्मृति और उसमें विश्रांति।

*

एकादशी माहात्म्य

[पद्मा/परिवर्तिनी एकादशी : २४ सितंबर]

युधिष्ठिर ने पूछा : केशव ! कृपया यह बताइये कि भाद्रपद मास के शुक्लपक्ष में जो एकादशी होती है, उसका क्या नाम है, उसके देवता कौन हैं और उसकी विधि क्या है ?

भगवान श्रीकृष्ण बोले : राजन् ! इस विषय में मैं तुम्हें एक आश्चर्यजनक कथा सुनाता हूँ, जिसे ब्रह्माजी ने महात्मा नारद से कहा था।

नारदजी ने पूछा : चतुर्मुख ! आपको नमस्कार है ! मैं भगवान विष्णु की आराधना के लिए आपके मुख से यह सुनना चाहता हूँ कि भाद्रपद मास के शुक्लपक्ष में कौन-सी एकादशी होती है ?

ब्रह्माजी ने कहा : मुनिश्रेष्ठ ! तुमने बहुत उत्तम बात पूछी है। क्यों न हो, वैष्णव जो ठहरे ! भाद्रपद के शुक्लपक्ष की एकादशी 'पद्मा' के नाम से विख्यात है। उस दिन भगवान हृषीकेश की पूजा होती है। यह उत्तम व्रत अवश्य करने योग्य है। सूर्यवंश में मान्धाता नामक एक चक्रवर्ती, सत्यप्रतिज्ञ और प्रतापी राजर्षि हो गये । वे प्रजा का अपने औरस पुत्रों की भाँति धर्मपूर्वक पालन किया करते थे । उनके राज्य में अकाल नहीं पड़ता था, मानसिक चिंताएँ नहीं सताती थीं और व्याधियों का प्रकोप भी नहीं होता था । उनकी प्रजा निर्भय तथा धन-धान्य से समृद्ध थी। महाराज के कोष में केवल न्यायोपार्जित धन का ही संग्रह था। उनके राज्य में समस्त वर्णों और आश्रमों के लोग अपने-अपने धर्म में लगे रहते थे। मान्धाता के राज्य की भूमि कामधेनु के समान फल देनेवाली थी। उनके राज्यकाल में प्रजा को बहुत सुख प्राप्त होता था।

एक समय किसी कर्म का फलभोग प्राप्त होने पर राज्य में तीन वर्षों तक वर्षा नहीं हुई। इससे उनकी प्रजा भूख से पीड़ित हो नष्ट होने लगी। तब संपूर्ण प्रजा ने महाराज के पास आकर इस प्रकार कहा :

प्रजा बोली : नृपश्रेष्ठ ! आपको प्रजा की बात सुननी चाहिए। इस समय अन्न के बिना प्रजा का नाश हो रहा है, अतः ऐसा कोई उपाय कीजिये जिससे हमारे योगक्षेम का निर्वाह हो।

राजा ने कहा : आप लोगों का कथन सत्य है क्योंकि अन्न को ब्रह्म कहा गया है। अन्न से प्राणी उत्पन्न होते हैं और अन्न से ही जगत जीवन धारण करता है। मैं प्रजा का हित करने के लिए पूर्ण प्रयत्न करूँगा।

ऐसा निश्चय करके राजा मान्धाता इने-गिने व्यक्तियों को साथ ले, विधाता को प्रणाम करके सघन वन की ओर चल दिये। वहाँ जाकर मुख्य-मुख्य मुनियों और तपस्वियों के आश्रमों में गये। एक दिन उन्हें ब्रह्मपुत्र अंगिरा ऋषि के दर्शन हुए। उन पर दृष्टि पड़ते ही राजा हर्ष में भरकर अपने वाहन से नीचे उतरे और दोनों हाथ जोड़कर उन्होंने ऋषि के श्रीचरणों में प्रणाम किया। ऋषि ने भी 'स्वस्ति' कहकर राजा का अभिनंदन किया और उनके राज्य के सातों अंगों की कुशलता पूछी। राजा ने अपनी कुशलता बताकर ऋषि के स्वास्थ्य का समाचार पूछा। ऋषि ने राजा को आसन और अर्घ्य दिया। उन्हें ग्रहण करके जब वे ऋषि के समीप बैठे तो ऋषि ने राजा से आगमन का कारण पूछा।

राजा ने कहा : भगवन् ! मैं धर्मानुकूल प्रणाली से प्रजा का पालन कर रहा था। फिर भी मेरे किसी कर्म के फलस्वरूप मेरे राज्य में वर्षा का अभाव हो गया है। आप मुझे वह उपाय कहिये जिससे राज्य में फिर से वर्षा हो।

ऋषि बोले : राजन् ! एकादशी का व्रत करो। भाद्रपद मास के शुक्लपक्ष में जो 'पद्मा' नाम से विख्यात एकादशी होती है, उसके व्रत के प्रभाव से निश्चय ही उत्तम वृष्टि होगी। नरेश ! तुम अपनी प्रजा और परिजनों के साथ इसका व्रत करो।

ऋषि के ये वचन सुनकर राजा अपने घर लौट आये। उन्होंने समस्त प्रजा के साथ भाद्रपद के शुक्लपक्ष की 'पद्मा एकादशी' का व्रत किया। इस प्रकार व्रत करने पर मेघ पानी बरसाने लगे। पृथ्वी जल से आप्लावित हो गयी और हरी-भरी खेती से सुशोभित होने लगी। उस व्रत के प्रभाव से सब लोग सुखी हो गये।

भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं : राजन् ! इस कारण इस उत्तम व्रत का अनुष्ठान अवश्य करना चाहिए। 'पद्मा एकादशी' के दिन जल से भरा हुआ घड़ा वस्त्र से ढककर दही और चावल के साथ ब्राह्मण को दान देना चाहिए, साथ ही छाता तथा जूता भी देना चाहिए। दान करते समय निम्नांकित मंत्र का उच्चारण करना चाहिए :

नमो नमस्ते गोविन्द बुधश्रवणसंज्ञक ॥
अघौघसंक्षयं कृत्वा सर्वसौख्यप्रदो भव ।
भुक्तिमुक्तिप्रदश्चैव लोकानां सुखदायकः ॥

'बुधवार और श्रवण नक्षत्र के योग से युक्त द्वादशी के दिन बुद्धश्रवण नाम धारण करनेवाले भगवान गोविन्द ! आपको नमस्कार है... नमस्कार है ! मेरी पापराशि का नाश करके आप मुझे सब प्रकार के सुख प्रदान करें। आप पुण्यात्माजनों को भोग और मोक्ष प्रदान करनेवाले तथा सुखदायक हैं।'

(पद्म पुराण, उ. खण्ड : ५९.३८-३९)

राजन् ! इस एकादशी के माहात्म्य को पढ़ने और सुनने से मनुष्य सब पापों से मुक्त हो जाता है।

('पद्म पुराण' से)

※ 'ऋषि प्रसाद' पत्रिका के सभी सेवादारों तथा सदस्यों को सूचित किया जाता है कि 'ऋषि प्रसाद' पत्रिका की सदस्यता के नवीनीकरण के समय पुराना सदस्यता क्रमांक/रसीद-क्रमांक एवं सदस्यता 'पुरानी' है - ऐसा लिखना अनिवार्य है। जिसकी रसीद में ये नहीं लिखे होंगे, उस सदस्य को नया सदस्य माना जायेगा।

※ नये सदस्यों को सदस्यता के अंतर्गत वर्तमान अंक के अभाव में उसके बदले एक पूर्व प्रकाशित अंक भेजा जायेगा।

गोमाता का वरदान : गोबर

गाय का दूध, दही, घी आदि तो स्वास्थ्यप्रद हैं ही, किंतु उसका गोबर और झरण भी बहुत लाभदायी हैं।

वैज्ञानिक अनुसंधानों के अनुसार देशी गाय का गोबर असंक्रामक है। इसमें फॉस्फोरस नामक तत्त्व बहुतायत में पाया जाता है। यह तत्त्व अनेक प्रकार के संक्रामक रोगों के कीटाणुओं का नाश करता है। गोबर से लीपे हुए घरों में परमाणु बम के घातक विकिरण भी निष्क्रिय हो जाते हैं।

गोबर में विद्युत-निरोधक शक्ति निहित है। विद्युत-प्रवाह गोबर को पार करके दूसरे द्रव्य में प्रवेश नहीं कर सकता। आकाश से गिरनेवाली बिजली गोबर के ढेर पर गिरते ही वहीं समा जाती है।

मृत शरीर में कई प्रकार के संक्रामक रोगों के कीटाणु होते हैं। इसीलिए जमीन पर गाय के गोबर का लीपन करके उस पर शव को लिटाया जाता है, ताकि उपस्थित कुटुंबीजनों के स्वास्थ्य की सुरक्षा हो सके।

कुष्ठ रोग में गाय का गोबर लाभकारी है। बंदर के काटने से हुए घाव पर गाय का गर्म गोबर लगाने से पीड़ा तत्काल गायब हो जाती है।

गोबर में जीवाणुओं एवं विषाणुओं को नष्ट करने की विशेष क्षमता होती है। इटली के चिकित्सक यहाँ तक सलाह देते हैं कि टी.बी. सेनिटोरियम (क्षयरोग चिकित्सालय) में गोबर रखा जाय क्योंकि टी.बी. के कीटाणु गोबर की गंधमात्र से मर जाते हैं।

सूखी खुजली में प्रभावित अंग पर गोबर लगाने से शीघ्र आराम होता है। खून की खराबी में और फोड़े-फुंसियाँ होने पर शरीर पर गोबर के लेप का प्रयोग शीघ्र प्रभाव दिखाता है। गोबर से बना साबुन चर्मरोगनाशक होता है और अंगकांति बढ़ाता है।

गाय के गोबर से बनी गौचंदन धूपबत्ती विषाणुओं (वायरस) का नाश करती है, वातावरण में सात्त्विकता लाती है। बाजारू अगरबत्तियों में परफ्यूम्स (सुगंधयुक्त रसायन) पड़ते हैं। इससे वे सुगंध तो देती हैं पर हानि भी करती हैं। लेकिन गौचंदन धूपबत्ती लाभ-ही-लाभ करती है।

अतुल औषधि दायिनी, पंचामृत की खानि।
गाय भवन में पालियो, कबहुँ न होवे हानि॥

१४ लोग जीते-जी मृतक समान

✲ संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से ✲

'श्रीरामचरितमानस' के लंकाकांड में एक प्रसंग आता है : बालिपुत्र अंगद लंका में गये। वहाँ रावण के साथ उनकी 'तू-तू, मैं-मैं' हुई। उन्होंने रावण से कहा : ''तू अगर जिंदा होता तो मैं तुझे मार डालता। मरे हुए को कौन मारे ?''

रावण : ''हूँह... मैं मरा हुआ हूँ ? तू कैसे बोलता है कि मैं मरा हुआ हूँ ? जिंदे को मुर्दा मानता है ?''

अंगद : ''हाँ, रावण ! १४ प्रकार के लोग जीते-जी ही मुर्दे के समान हैं :

(१) वाममार्गी (२) कामी
(३) कृपण (कंजूस) (४) अत्यंत मूढ़
(५) अति दरिद्र (६) बदनाम
(७) बहुत बूढ़ा (८) नित्य रोगी
(९) निरंतर क्रोधयुक्त रहनेवाला
(१०) भगवद्विमुख
(११) वेदों और संतों का विरोधी
(१२) अपने ही शरीर को पोसनेवाला
(१३) परनिंदा करनेवाला (१४) महान पापी

लंकेश ! तुमने निंदनीय काम भी किये हैं, भगवद्विमुख भी हो, कामी भी हो और तुम्हारा अपयश भी हो रहा है। मुझे तुममें चार-चार मृतक दिखायी दे रहे हैं तो मैं तुम्हें कैसे मारूँ ?''

उच्च रक्तदाब

उच्च रक्तदाब के कारण :

(१) युवावस्था में उच्च रक्तदाब का प्रमुख कारण शारीरिक व मानसिक तनाव है। जीवन-संघर्ष में मन और तन पर जो दबाव पड़ता है, उसे आधुनिक परिभाषा में 'स्ट्रेस' और 'स्ट्रेन' कहा जाता है। भावुक व दुर्बल मनवाले व्यक्तियों पर स्ट्रेन का प्रभाव विशेष होता है। स्ट्रेन के कारण शरीर की नस-नाड़ियाँ असाधारण तनाव का अनुभव करती हैं, जो उच्च रक्तदाब को जन्म देता है। समय पाकर यह हृदय, वृक्क और मस्तिष्क को दुष्प्रभावित कर हार्ट अटैक, वृक्क-विकार, लकवा, ब्रेन हैमरेज (मस्तिष्क में रक्तस्राव) आदि रोगों के लिए द्वार खोल देता है।

(२) आवश्यकता को ध्यान में रखे बिना अधिक मात्रा में एवं बार-बार खाना, विशेषतः खट्टे-नमकीन, तीखे, तले हुए, उष्ण-तीक्ष्ण द्रव्यों का तथा स्निग्ध पदार्थों का अति सेवन उच्च रक्तदाब को निमंत्रण देता है। कृपया इनसे बचें।

सर्वेक्षण से ज्ञात हुआ है कि स्थूल (मोटे) व्यक्तियों में रक्तदाब उच्च होने की विशेष संभावना रहती है। आश्रम में केवल २० रु. में मिलनेवाला 'शोधनकल्प चूर्ण' मँगवाकर मोटापा दूर करने के लिए बाजारू दवाइयों पर होनेवाले व्यर्थ के खर्च से बच सकते हैं।

(३) नमक स्वभाव से ही रक्तदाब बढ़ानेवाला है। कंदमूल, फल एवं सब्जियों में शरीर की आवश्यकता-पूर्ति करने के लिए स्वाभाविक रूप में नमक होता ही है। अतः सब्जी बनाते समय नमक का उपयोग अल्प मात्रा में ही करें।

(४) धूम्रपान, मद्यपान तथा मादक पदार्थों के सेवन के बाद होनेवाली उत्तेजना से भी रक्तदाब में वृद्धि होती है।

(५) **एलोपैथिक दर्दनिवारक दवाओं (एस्पीरीन, एनासीन आदि), एंटिबायोटिक्स, सल्फा-ड्रग्ज आदि का दीर्घकाल तक सेवन करने से किडनियों की क्रियाशीलता कम हो जाती है,** जिससे वे शरीर में संचित मल का निष्कासन करने में असमर्थ हो जाती हैं। यह संचित मल भी रक्तदाब में वृद्धि कराता है।

(६) आयुर्वेद के अनुसार पित्त के प्रकोप से रक्तदाब में वृद्धि होती है। उपरोक्त सभी हेतु पित्त-प्रकोपक हैं।

लक्षण : उच्च रक्तदाब के रोगी में शिरःशूल, भ्रम (चक्कर), घबराहट, हृदय की धड़कन बढ़ना, चलने से या परिश्रम से श्वास फूलना, अनिद्रा, ज्ञानेन्द्रियों (आँख, कान, नाक आदि) का अपने विषयों को ग्रहण करने में असमर्थ होना आदि लक्षण उत्पन्न होते हैं।

चिकित्सा : रक्तदाब के संतुलन के लिए किये जानेवाले आधुनिक उपचार इस व्याधि को समूल मिटाने में बिल्कुल समर्थ नहीं हैं, अपितु वे शरीर के गुर्दे आदि अवयवों पर विपरीत प्रभाव डालकर समय पाकर किडनी फेल्युअर जैसी भयावह व्याधियों का निमित्त बन जाते हैं। रक्तदाब को कम करनेवाली एलोपैथिक दवाएँ उच्च रक्तदाब पर नियंत्रण अवश्य करती हैं, परंतु उनसे रोग की उत्पत्ति के मूल कारण पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। अतः इनसे सावधान ! **इनकी निरर्थकता को देखकर पाश्चात्य चिकित्सक भी भारतीय ऋषि-मुनियों के आयुर्वेद तथा योगशास्त्र निर्दिष्ट उपायों के प्रति आकृष्ट हुए हैं।**

ध्यान, आसन, प्राणायाम और मंत्रजप से अत्यंत सुलभता से रक्तदाब पर नियंत्रण पाया जा सकता है। नियमित ध्यान, प्राणायाम आदि करनेवाले साधकों में यह बीमारी नहीं पायी जाती। अतः प्राणायाम और घरेलू उपचार, जो पूर्ण निर्दोष और सफल साबित हो रहे हैं, उन्हींकी ओर लौटें।

ध्यान से मानसिक शांति मिलती है। ध्यान और आसन से (विशेषतः, शवासन तनावग्रस्त तन और मन के शिथिलीकरण एवं रक्तदाब को नियंत्रित रखने

में अचूक पाया गया है) नसों में ढीलापन आता है। शरीर में रक्त का संचार प्राणों के द्वारा ही होता है। प्राण निर्बल होने से रक्त-संचार मंद पड़ जाता है। प्राणायाम से प्राणबल बढ़ता है व रक्त-संचार सुव्यवस्थित होने लगता है। रक्त, नाड़ियाँ तथा मन भी शुद्ध हो जाता है। प्राणायाम से धमनियों का काठिन्य भी दूर हो जाता है और वे मृदु व लचीली बनती हैं जिससे रक्तदाब नियंत्रित रहता है। मंत्रजप से मन में सत्त्वगुण की वृद्धि होती है, जिससे आचार-विचार सात्त्विक होने लगते हैं व मनोबल बढ़ता है।

'ॐ शांतिः' - इस मंत्र का जप करने से भी रक्तदाब नियंत्रित होता है।

उपचार :

(१) पित्तशमनार्थ सप्तामृतलौह, स्वर्णमाक्षिक भस्म तथा प्रवालपिष्टी समभाग मिलाकर आधा ग्राम मात्रा में दिन में २ बार घी के साथ लें।

(२) २०० मि.ली. पानी में १५ से २० ग्राम काली द्राक्ष ५-६ घंटे तक भिगोकर फिर एक चौथाई रहने तक उसे उबालें। इस काढ़े के साथ ३ से ५ ग्राम त्रिफला चूर्ण रात को सोने से पहले लें। त्रिफला सौम्य शीत-विरेचक एवं श्रेष्ठ रसायन द्रव्य है। इसका सेवन करनेवाले को उच्च रक्तदाब की बीमारी नहीं होती।

(३) सर्पगंधा, शंखपुष्पी तथा जटामांसी का चूर्ण समभाग मिलाकर ३ ग्राम मिश्रण दिन में दो-तीन बार लेने से रक्तदाब शीघ्र ही नियंत्रित होता है।

(४) **किशमिश-प्रयोग** : रात को १ किशमिश गुलाबजल में भिगो दें और सुबह चबाकर खायें। दूसरे दिन २, तीसरे दिन ३ - इस प्रकार हररोज १ किशमिश बढ़ाते हुए २१वें दिन २१ किशमिश लें। फिर १-१ किशमिश कम करते हुए (२०,१९,१८ इस प्रकार से) १ किशमिश पर आयें। यह प्रयोग एक बार करने के बाद कुछ दिन छोड़कर दुबारा करें। ३ बार यह प्रयोग करने से उच्च रक्तदाब नियंत्रित हो जाता है। आहार में पथ्य का पालन अवश्य करें।

(५) असली रुद्राक्ष की माला गले में पहनने से भी रक्तदाब नियंत्रित रहता है।

पथ्यकर आहार : उच्च रक्तदाब में आँवला, देशी गाय के दूध तथा घी का सेवन परम हितकर है।

आँवले का मुरब्बा नियमित रूप से खाने से भी रक्तदाब नियंत्रित रहता है। इस रोग में मूँग, अदरक, नींबू, अनार, सेब एवं अंगूर का सेवन लाभदायी है। ये रक्तदाब घटानेवाले हैं।

अपथ्यकर आहार : चाय, कॉफी, अति स्निग्ध एवं मिर्च-मसालेयुक्त पदार्थ, दही, टमाटर, आलू, पनीर, मिठाई, मांस, फास्टफूड, पचने में भारी, ठंडे व बासी पदार्थ हानिकारक (रक्तदाब बढ़ानेवाले) हैं।

अपथ्यकर विहार : दिन में सोना, रात्रि-जागरण, अति श्रम एवं धूप में घूमना हानिकारक हैं।

शरद ऋतु में पथ्य-अपथ्य

रोगाणां शारदी माता। अर्थात् शरद ऋतु रोगों की माता है। इसमें जठराग्नि मंद रहती है तथा पित्त का स्वाभाविक प्रकोप व वायु का शमन होता है।

पथ्यकर आहार : इस ऋतु में ठंडी तासीरवाले, पचने में हलके, कसैले, कड़वे और मीठे पदार्थों का सेवन करना चाहिए। मक्खन, मिश्री, साठी के चावल, गेहूँ, जौ, मूँग, परवल, पेठा, लौकी (घीया), तोरई, चौलाई, पालक, गाजर, आँवला, अनार, अंजीर, पके केले, जामुन, नारियल, मौसमी, सेवफल, गन्ना तथा जीरा, धनिया व सौंफ - ये पदार्थ पथ्यकर (सेवन करने योग्य) हैं।

गाय का दूध, घी, चावल की खीर तथा किशमिश व काली द्राक्ष विशेष पथ्यकर हैं।

अपथ्यकर आहार : तले हुए, तीखे, खट्टे (दही, खट्टी छाछ आदि), नमकीन, गर्म तासीरवाले एवं पचने में भारी पदार्थ, हींग, लाल मिर्च, तिल व सरसों का तेल, बाजरा, मक्का, अदरक, लहसुन, प्याज, इमली, पुदीना, ककड़ी, मेथी, भिंडी, बैंगन, उड़द की दाल, मूँगफली आदि अपथ्यकर (त्याज्य) आहार हैं।

जीरा, धनिया, सौंफ एवं मिश्री मिलायी हुई ताजी छाछ का सेवन कर सकते हैं।

भरपेट भोजन, दिन की निद्रा, बर्फ, तेल व तले हुए पदार्थों का सेवन विशेष रूप से त्याज्य है।

बच्चे को जीवनदान मिला

हमारा सारा परिवार सद्गुरुदेव पूज्य बापूजी से दीक्षित है। २० दिसम्बर २००१ को हमें पता चला कि हमारे पाँच साल के एकमात्र पुत्र को ब्लड कैंसर है। २४.१२.२००१ से २.१.२००२ तक वह (केस नं. २१२७०) 'टाटा मेमोरियल अस्पताल, मुंबई' में भर्ती रहा।

डॉक्टर ने बच्चे का बोन मेरो (अस्थि-मज्जा) बदलवाने के लिए कहा, जिसमें १० लाख रुपये का खर्च था, फिर भी ठीक होने की गारंटी नहीं थी। इलाज के लिए हमारे कारखाने से ९ लाख का चेक टाटा मेमोरियल अस्पताल को दिया जा चुका था।

जब हमें बच्चे की बीमारी का पता चला, तभी हमने निश्चय किया कि उसे साथ लेकर एक बार बापूजी से आशीर्वाद लेने जाना है। गुरुदेव जो बोलेंगे, वही करना है। जनवरी २००२ में नागपुर सत्संग-कार्यक्रम में बेटे को लेकर गये, मगर गुरुदेव से नहीं मिल पाये। फिर फरवरी २००२ में सांताक्रूज (मुंबई) के सत्संग में गये, वहाँ भी नहीं मिल सके। उसके बाद मार्च २००२ में होली शिविर पर सूरत गये। वहाँ बड़दादा की परिक्रमा कर मनौती मानी और बापूजी की कृपा हो गयी। आखिरी दिन बापूजी व्यासपीठ के बगल के दरवाजे से अचानक बाहर आये और बच्चे के सिर पर हाथ रखकर बोले : 'इसे बीमारी है, गोझरण अर्क पिलाना। ठीक हो जायेगा।' उसी दिन से उसे गोझरण अर्क पिलाना शुरू कर दिया और अस्पताल की सारी दवाइयाँ पूर्णरूप से बंद कर दी गयीं। बच्चा ठीक होने लगा।

फिर हम कई बार मुंबई जाँच कराने गये, परंतु डॉक्टर ने कहा कि अब इसे कोई बीमारी नहीं है, इलाज की जरूरत नहीं है। इसलिए हमारे ९ लाख रुपये भी अस्पताल से फैक्टरी में वापस भेज दिये गये।

अब बच्चा एकदम स्वस्थ है। पूज्य बापूजी की अद्भुत कृपा से बच्चे को जीवनदान मिला, पर बापूजी कहते हैं कि 'गोझरण अर्क की एवं भारत के ऋषियों की लोकमांगल्यमयी खोज की कृपा है।' बापूजी के श्रीचरणों में कोटि-कोटि प्रणाम।

- श्रीमती राजकुमारी सिंह
९७/९, विजय नगर, कानपुर-५.
फोन : ०५१२-२२३५५९०.

*

सब रोग एक साथ मिटे !

मुझे पीलिया, एसिडिटी, हीमोग्लोबिन की कमी इस तरह के कई रोग हो गये थे। डॉक्टर ने कहा कि ६ महीने तक दवा के साथ बेडरेस्ट लेना पड़ेगा। किंतु 'ऋषि प्रसाद' में गुरुजी ने बताया था कि 'हर बीमारी की दवा है : गुरुमंत्र का जप बढ़ाओ और गोझरण गर्म न पड़े तब तक लो। गर्म पड़े तो थोड़े दिन छोड़ो अथवा रसायन चूर्ण के साथ लो।'

मैंने जप बढ़ा दिया, गोझरण अर्क लेना शुरू किया, 'श्री आसारामायण' का पाठ शुरू किया और बड़ बादशाह की २१ परिक्रमा की। १५ दिन के बाद जब मैं डॉक्टर के पास जाँच कराने गयी तो वे हैरान रह गये और बोले : 'आपको तो ४-५ रोग हो गये थे। मैं उनकी क्रमशः दवा देता लेकिन मेरी जिंदगी में पहली बार ऐसी घटना घटी है कि सब रोग एक साथ मिट गये!'

- सौ. आशा लक्ष्मीकांत ताड़े
सिडको, औरंगाबाद (महाराष्ट्र).

आवश्यक सूचना

आश्रम के चिकित्सालयों में टोकन फीस लेकर अत्यल्प कीमत में मरीजों को दवाइयाँ दी जाती हैं। अगर कोई वैद्य बाहर की महँगी दवाइयाँ लिखकर दे तो उसके लिए आश्रम जिम्मेदार नहीं है।

['ऋषि प्रसाद' प्रतिनिधि]

व्यासपूर्णिमा के पश्चात् चतुर्मास का प्रारंभ हुआ और फिर आया १८ जुलाई से १६ अगस्त तक जप-अनुष्ठान-उपासना के लिए उत्तम मास - पुरुषोत्तम मास । इस स्वर्णिम काल में ११ अगस्त तक योगिराज पूज्य बापूजी अमदावाद आश्रम में ही विराजमान रहे ।

भारत के विभिन्न क्षेत्रों से जप-अनुष्ठान हेतु यहाँ आये साधकों को भी पूज्यश्री के दिव्य आध्यात्मिक आभामंडल से ओतप्रोत वातावरण में रहने का सुनहरा अवसर प्राप्त हुआ । पूज्यश्री की आत्मस्पर्शी वाणी, ध्यान के गहरे प्रयोग व शक्तिपात-वर्षा का सहज लाभ प्राप्त कर सबने धन्यता का अनुभव किया ।

१७ व १८ अगस्त को डूँगरपुर (राज.) में सत्संग व भंडारा संपन्न हुआ । लगातार हो रही बारिश के कारण इस कार्यक्रम की सफलता पर कुछ लोग प्रश्नचिह्न लगा रहे थे किंतु पूज्यश्री ने कहलवाया कि ''आप चिंता न करें । मैं इंद्र को कह दूँगा । तैयारी करें ।'' अंततः इंद्रदेव के साथ सूर्यदेव ने भी लोकमांगल्य के इस दैवी आयोजन में अपनी सहमति दिखायी, अनुकूलता का परिचय दिया।

'कृषि उपज मंडी' प्रांगण में आयोजित इस दो दिवसीय सत्संग-कार्यक्रम में प्रातःस्मरणीय परम पूज्य बापूजी ने अपने सारगर्भित, हृदयस्पर्शी प्रवचन में युवाओं को विश्व-संस्कृति का सिरमौर बनने का आह्वान किया । साथ ही इस भौतिकतावादी वातावरण में विकारों से बचने के लिए संत-सान्निध्य, सत्संग और सुसंस्कारों के दिव्य प्रभाव से जीवन सार्थक करने पर बल दिया ।

सत्संग में आयी महिलाओं की ओर मुखातिब पूज्यश्री ने उन्हें मस्तक पर प्लास्टिक की बिंदी लगाने के बजाय सिंदूर अथवा चंदन का तिलक करने की सलाह दी। ललाट में तिलक करने से शिवनेत्र (पीनियल ग्रंथि) विकसित होता है जबकि प्लास्टिक की बिंदियों में जानवरों की हड्डियों से बना सरेस (जिलेटिन) डाला जाता है जो हानि करता है।

१८ अगस्त को सत्संग-सत्र के पश्चात् विभिन्न क्षेत्रों से आये गरीबों एवं आदिवासियों को भोजन-प्रसाद के साथ मिठाई व कपड़ों के अतिरिक्त नकद दक्षिणा भी दी गयी ।

पूज्यश्री के आगामी सत्संग-कार्यक्रम

* २८ व २९ अगस्त : गोधरा *(पूर्णिमा दर्शन : २९ अगस्त)*
* ५ से ७ सितंबर : जन्माष्टमी महोत्सव, सूरत आश्रम

मध्य प्रदेश की मुख्यमंत्री सुश्री उमा भारती द्वारा 'विकास की वैकल्पिक रणनीति', इस विषय पर भोपाल (म.प्र.) में आयोजित त्रिदिवसीय संगोष्ठी का समापन १२ अगस्त को पूज्यश्री के आशीर्वचनों से हुआ। इस विषय में वहाँ के अखबारों द्वारा प्रकाशित खबरों के कुछ अंश यहाँ प्रस्तुत हैं :

जोगन से कंधा मिलाओ, जोग का सुख पाओ

दैनिक भास्कर

भोपाल, १२ अगस्त । संत श्री बापूजी ने आज राज्य के अधिकारियों से कहा कि आप लोग इस जोगन (मुख्यमंत्री) के कंधे से कंधा मिलाकर चलो। ऐसा करोगे तो लोगों के काम आओगे और जोग का सुख भी पाओगे। सुश्री उमा भारती कर्मयोग कर रही हैं । रास्ते में मुझसे बोलीं कि 'बापूजी! मैं खुद को इन स्थितियों में फँसा हुआ महसूस करती हूँ।' तो दरअसल, ऐसे ही लोग नाना व्याधियों में फँसे हुए लोगों को उबार सकते हैं। इसीलिए मैं आपसे (अफसरों से) कहता हूँ कि इस जोगन से कंधा मिलाकर चलो।

संत श्री आसारामजी ने कहा कि परहित से बड़ा कोई धर्म नहीं है। उन्होंने कहा दुनिया की ८०% संपत्ति पर २०% लोगों का कब्जा है लेकिन वे अशांति में जी रहे हैं। गरीब में त्याग का भाव हो और अमीर में सेवा का भाव हो तो सबका कल्याण हो सकता है। आखिर में संतश्री के साथ भक्तों ने गाया : **लक्ष्य न ओझल होने पाये, कदम मिलाकर चल । सफलता तेरे चरण चूमेगी, आज नहीं तो कल॥**

संतश्री उवाच

* यह (सुश्री भारती) जोगन है, कागज पर काम कर मैडम को खुश करनेवालों से यह जोगन खुश नहीं होगी । * अधिकारियों से विनम्र प्रार्थना है कि वे इस जोगन से कंधा मिलाकर कार्य करें। इससे उन्हें भी जोग प्राप्त हो सकता है। * गाँधीजी कहा करते थे कि गाय पशु नहीं बल्कि सुंदर अर्थ-तंत्र है। * शासक में मानवीय संवेदना न हो तो उसे शोषक बनते देर नहीं लगती।

(दैनिक जागरण, भोपाल, १३ अगस्त २००४)

जोगन से कंधा मिलाओ और म.प्र. को विकास के पथ पर ले जाओ !

भोपाल, १२ अगस्त (नि.प्र.) । संत श्री आसारामजी बापू ने आज मुख्यमंत्री संन्यासिनी सुश्री उमा भारती को 'जोगन' की संज्ञा देते हुए लोगों से आह्वान किया कि वे इस 'जोगन' के साथ कंधा मिलायें और प्रदेश को विकास के पथ पर आगे ले जायें।

संतजी ने प्रवचन-शैली में विकास की आध्यात्मिक व्याख्या करते हुए कहा कि 'शासक को संवेदनशील होना चाहिए। मानवीय संवेदना के बगैर समाज और देश का विकास नहीं हो सकता।'

इसके पूर्व मुख्यमंत्री ने कहा कि 'प्रदेश के नागरिकों को स्वयं पर पूरा विश्वास है । नागरिकों के सहयोग से ही मध्य प्रदेश विकसित राज्य बनेगा।

संतों के सहयोग के बगैर विकास का लक्ष्य हासिल नहीं किया जा सकता । शिक्षा, स्वास्थ्य व वृद्धों की सेवा - ये तीनों विकास के सूत्र संतों के माध्यम से जन-जन तक पहुँचने चाहिए।'

विधानसभा के सभागार में यह एक अनूठा प्रसंग था, जब एक आध्यात्मिक संत की वाणी से लोग रू-बरू हुए। यह मौका था 'विकास की वैकल्पिक रणनीति' पर आयोजित तीन दिवसीय संगोष्ठी के समापन का । संतजी की उपस्थिति का यह स्पष्ट संकेत था कि 'अध्यात्म के स्पर्श के बिना विकास का कोई भी मॉडल अधूरा है ।' यही बात संत श्री आसारामजी ने अपनी रोचक शैली में समझायी भी । उन्हें सुनने के लिए बड़ी संख्या में श्रोता मौजूद थे। संतजी ने कहा कि 'भौतिक समृद्धि के साथ आध्यात्मिक विकास भी जरूरी है। भक्तियोग, ज्ञानयोग और कर्मयोग - ये व्यक्ति के विकास के मूल तत्त्व हैं ।' उन्होंने उमाजी को कर्मयोगी बताया और कहा कि 'शोषण, अशांति एवं अन्य कई समस्याओं के बावजूद भारत की आध्यात्मिक ऊर्जा का क्षय नहीं हुआ है। यही भारत की शक्ति है। इसी ऊर्जा को बनाये रखने के लिए सभीको कर्मयोग अपनाना होगा।'

संतजी ने उमाजी को बार-बार 'जोगन' कहकर संबोधित किया। उन्होंने कहा कि 'मध्याह्न भोजन (विद्यार्थियों के लिए निःशुल्क मध्याह्न भोजन योजना) के रूप में प्रदेश में सेवा का महायज्ञ शुरू हुआ है ।'

राज्य की
नईदुनिया

बिन फेरे हम तेरे

भोपाल, १२ अगस्त (न.प्र.) : संत श्री आसारामजी ने भक्ति में शक्ति का अनूठा सूत्र समझाया। उन्होंने कहा कि इसीके माध्यम से विकास के लक्ष्य को पाया जा सकता है। भगवान के प्रति 'बिन फेरे-हम तेरे...' इस प्रकार की भावना रखने से एवं 'हरि ॐ कीर्तन' से भी अद्वितीय आनंद की प्राप्ति हो सकती है। उन्होंने लोगों से तालियाँ बजाकर 'हरि ॐ' का क्रमशः तेज गति से जाप करने को कहा और भक्ति के क्रमिक सूत्र बताये। वे थे - आस्था, सेवा, संकल्प, साहस, विकास, दृढ़ संकल्प, शक्ति और आनंद।

संत श्री आसारामजी ने कहा कि विकास का पहला चरण है - शारीरिक व मानसिक स्वास्थ्य, चित्त की शांति और आध्यात्मिक शक्ति । मनुष्य जो देता है वही प्राप्त करता है । इसलिए दूसरों के लिए जीना सीखो ।

संतजी ने अपने प्रवचन में पंचगव्य, वृक्षारोपण, स्त्री-शिक्षा, स्वास्थ्य तथा वृद्धों की सेवा का महत्त्व समझाया। उन्होंने कहा कि गरीबों को त्याग और समृद्धों को सेवा का संकल्प लेना चाहिए। संत श्री आसारामजी ने श्रोताओं से 'हरि ॐ' का जाप भी कराया ।

*

'सत्य को पाने का लक्ष्य बनायें साधक'

दैनिक भास्कर

बै.सं., बैरागढ़, १२ अगस्त । ब्रह्मज्ञानी संतशिरोमणि आसारामजी महाराज ने कहा है कि यदि साधक सत्य को पाने का लक्ष्य बनायें तो उनका जीवन सँवर जायेगा। पूज्य बापूजी गुरुवार को गाँधीनगर स्थित अपने आश्रम में प्रवचन दे रहे थे। वे मध्य प्रदेश शासन के विशेष विमान से भोपाल पहुँचे । स्टेट हेंगर पर उनका श्रद्धालुओं ने आत्मीय अभिनंदन किया। राज्य शासन की ओर से गृहमंत्री बाबूलाल गौर, खेल एवं युवक कल्याण मंत्री रुस्तमसिंह तथा वनमंत्री ढालसिंह बिसेन ने पूज्य बापूजी की अगवानी की ।

पूज्य बापूजी मध्य प्रदेश शासन द्वारा 'विकास की वैकल्पिक रणनीति' विषय पर आयोजित संगोष्ठी के समापन-सत्र को संबोधित करने भोपाल आये । उनके

आगमन की खबर सुनकर बड़ी संख्या में उनके शिष्य विमानतल पहुँचे। उनका विमान उतरते ही स्टेट हेंगर परिसर 'हरि-हरि बोल' के जयकारों से गूँज उठा। श्रद्धालुओं में असंख्य महिलाएँ भी पूज्य बापूजी के दर्शन करने पहुँची थीं। पूज्य बापूजी ने हाथ हिलाकर सबका अभिनंदन स्वीकार किया। विमानतल से उतरकर बापूजी सीधे गाँधीनगर आश्रम के लिए रवाना हुए। आश्रम में श्रद्धालुओं की ओर मुखातिब बापूजी ने कहा कि साधक सत्य को पाने का लक्ष्य बनायें और आत्मज्ञान पाकर मुक्त हो जायें। उन्होंने कहा कि दूसरों की पीड़ा हरने से आपके दुःख अपने-आप दूर हो जायेंगे। पूज्य बापूजी ने श्रद्धालुओं से स्वदेशी वस्तुओं का उपयोग करने का आह्वान किया। आश्रम में मुख्यमंत्री सुश्री उमा भारती भी उपस्थित थीं। पूज्य बापूजी ने उमाजी के कार्यों की सराहना करते हुए उन्हें दीर्घायु होने का आशीर्वाद दिया।

पूज्य बापूजी का स्वागत करते हुए उमाजी ने कहा कि सरकार बनाना सरल है, उसे चलाना कठिन। सरकार चलाने के लिए हमें पूज्य बापूजी जैसे महान संतों के आशीर्वाद की आवश्यकता है। उमाजी ने कहा कि संगोष्ठी के लिए हमें विशिष्ट शख्सियत की तलाश थी। पूज्य बापूजी के रूप में हमारी तलाश पूरी हुई।

बापूजी की एक झलक पाने के लिए बेताब साधक गुरु के दर्शन कर भावविभोर हो उठे। आश्रम का पंडाल भक्तों की भीड़ से खचाखच भरा था।

*

बौद्धिक-आर्थिक समृद्धि के साथ आध्यात्मिक विकास जरूरी

दैनिक जागरण

मुख्य संवाददाता, भोपाल, १३ अगस्त। 'पाश्चात्य कल्चर और भारतीय संस्कृति में जमीन-आसमान का फर्क है। हमें इस अंतर को समझते हुए विकास के उन साधनों को अपनाना चाहिए, जो बौद्धिक व आर्थिक समृद्धि के साथ ही आध्यात्मिक समृद्धि बढ़ायें।' - यह कहना है आध्यात्मिक संत श्री आसारामजी बापू का। वे आज यहाँ 'विकास की वैकल्पिक रणनीति' विषय पर आयोजित तीन दिवसीय राष्ट्रीय संगोष्ठी के समापन-अवसर पर बोल रहे थे। कार्यक्रम में मुख्यमंत्री उमा भारती ने विकास की अपनी प्राथमिकताएँ बतायीं। उन्होंने बार-बार नीतियाँ बदलने को अनुचित बताते हुए कहा कि अपने राज्य के लोगों को गिनीपिग नहीं बनाया जाना चाहिए। उनके अनुसार देशज ज्ञान और उद्योगों में नयी तकनीक के समावेश की दोनों धाराओं पर एक साथ चलते हुए मध्य प्रदेश को विकास-मॉडल राज्य बनाया जायेगा।

विधानसभा भवन के सभागार में आयोजित इस कार्यक्रम में संत श्री आसारामजी ने अपने श्रोताओं को संबोधित करते हुए उनका हास्ययोग से साक्षात्कार कराया और गाय, वृक्ष तथा मानवीय संवेदना को भारतीय परिस्थिति के अनुरूप विकास का आधार बताया। उन्होंने कहा कि गुलामी के पहले भारत विश्वगुरु था और फिर विश्वगुरु बनने की ओर अग्रसर है।

संत श्री आसारामजी बापू ने विकास की वैकल्पिक रणनीति बनाने की दिशा में किये जा रहे प्रयासों की सराहना करते हुए कहा कि विकास का नजरिया यह न हो कि केवल आर्थिक समृद्धि आये। इसके साथ मन और शरीर भी स्वस्थ रहें। उन्होंने कहा कि सरकार के साथ नागरिकों का भी फर्ज है कि गरीबी-रेखा के नीचे जीवन-यापन करनेवाले परिवारों का स्तर सुधारने में सहयोग करें। संतजी ने कहा कि गाँव के बुजुर्गों की देखभाल की जिम्मेदारी सरकार के बजाय गाँववालों की होनी चाहिए।

इस अवसर पर मुख्यमंत्री उमा भारती ने वैश्वीकरण को खतरा मानने के बजाय अवसर के रूप में देखने का सुझाव देते हुए कहा कि हमारे पास प्रचुर मात्रा में संसाधन उपलब्ध हैं। इनका सही इस्तेमाल करें तो वैश्वीकरण भारत के लिए वरदान साबित हो सकता है। इसके लिए हमें अपने संसाधनों के प्रति आत्मविश्वास और स्वाभिमान जगाना होगा। उन्होंने कहा कि बढ़ती आबादी चिंता का विषय है लेकिन हमें अपनी इस ताकत को पहचानना होगा। वर्ष २०१०-२० के दरम्यान दुनिया के अधिकांश देशों में वृद्धों की तादाद अधिक होगी, जबकि उस समय भारत में युवाशक्ति होगी जिसे सही दिशा देकर विकास का हथियार बनाया जा सकता है। सुश्री भारती ने कहा कि अब यह हमारे ऊपर निर्भर है कि हम इस 'यूथ फोर्स' को तरक्की का आधार बनायें या बोझ मानें। उन्होंने कहा कि प्रदेश की भाजपा सरकार ने विकास के लिए तीन साल की समय-सीमा निर्धारित की है, उसमें से आठ माह बीत चुके हैं।

*

अध्यात्म बिना स्थायी विकास नहीं : संत श्री आसारामजी बापू

भोपाल, १२ अगस्त । मिसाइल मैन और राष्ट्रपति डॉ. ए.पी.जे. अब्दुल कलाम के संदेश से शुरू होकर संत श्री आसारामजी बापू की आध्यात्मिक वाणी के साथ तीन दिवसीय संगोष्ठी का समापन हो गया। डॉ. कलाम ने विकास की अपनी अवधारणा (विचार) बताते हुए कहा कि ग्रामीण क्षेत्रों में सुविधाएँ पहुँचानी चाहिए । वहीं आसारामजी ने संदेश दिया कि आध्यात्मिकता के बिना स्थायी विकास असंभव है ।

विधानसभा के मानसरोवर सभागार में 'विकास की वैकल्पिक रणनीति' विषय पर आयोजित इस संगोष्ठी के समापन-अवसर पर संत श्री आसारामजी मुख्य अतिथि के रूप में उपस्थित थे । संतजी ने विकास के पाश्चात्य अति उपभोक्तावादी मॉडल को घातक बताया। 'सण्डे हो या मण्डे, रोज खाओ अण्डे' के प्रचार को भी बापूजी ने नहीं बख्शा। उन्होंने कहा कि गलत जीवन-पद्धतियाँ न केवल मानव के शरीर को नुकसान पहुँचाती हैं बल्कि उसके मन को भी प्रभावित कर संपूर्ण विकास को अवरुद्ध करती हैं।

नवभारत

उन्होंने कहा कि मैं भगवान से प्रार्थना करता हूँ कि गरीबों को त्याग करने की अधिक क्षमता और अमीरों को अधिक सेवा की क्षमता प्रदान करे। विकास की ऊँचाई तक पहुँचने के लिए आध्यात्मिक विकास भी जरूरी है । भक्तियोग, ज्ञानयोग और कर्मयोग व्यक्तित्व-विकास के मूल तत्त्व हैं। पाश्चात्य और भारतीय जीवन-पद्धतियों में विशाल अंतर है। पाश्चात्य दर्शन में भौतिक समृद्धि का महत्त्व है । संत आसारामजी ने लोगों से आह्वान किया कि वे दूसरों के लिए स्वयं का विकास करें। विकास का पहला चरण है शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य, चित्त की शांति और आध्यात्मिक शक्ति । उन्होंने कहा कि भारत की आध्यात्मिक ऊर्जा का क्षय नहीं हुआ है। यही भारत की शक्ति है। इसी ऊर्जा को बनाये रखने के लिए सभीको कर्मयोग का मार्ग अपनाना होगा।

इस अवसर पर मुख्यमंत्री ने कहा कि विकास का मापदंड लोगों के जीवन में आनेवाला सकारात्मक परिवर्तन होना चाहिए । विकास के लाभों का केन्द्रीयकरण न होकर उनका विस्तार हो।

सत्य की पहचान ही साधक का एकमात्र ध्येय

नवभारत । संत श्री आसारामजी महाराज गुरुवार को राजधानी पधारे । पूज्य बापूश्री के नगर-आगमन पर श्री योग वेदांत सेवा समिति के पदाधिकारियों एवं भक्तजनों ने उनका उत्साह एवं हर्षोल्लास के साथ जोरदार आत्मीय स्वागत किया।

नवभारत

इस अवसर पर गृहमंत्री बाबूलाल गौर, भाजपा जिलाध्यक्ष भगवानदास सबनानी, श्री योग वेदांत सेवा समिति के राजकुमार पटेल, जयकिशन लालचंदानी, ओ.पी. कृपलानी, पारसमल छतवानी, राजेश बेलानी सहित अनेक श्रद्धालुगण मौजूद थे। संतजी मध्य प्रदेश शासन द्वारा आयोजित 'विकास की वैकल्पिक रणनीति' विषय पर आयोजित संगोष्ठी में भाग लेने राजधानी पधारे। संगोष्ठी में शामिल होने से पूर्व संतजी गाँधीनगर स्थित अपने आश्रम में पहुँचे। यहाँ बड़ी संख्या में मौजूद साधकों को अपनी मर्मज्ञ, सारगर्भित अमृतवाणी के माध्यम से प्रवचन देते हुए उन्होंने कहा कि साधक का एकमात्र ध्येय सत्य की पहचान करना ही होना चाहिए। उन्होंने निर्धनों की सेवा को सच्ची सेवा बताया। पूज्य बापूजी ने इस बात पर जोर दिया कि साधकों द्वारा स्वदेशी वस्तुएँ अपनायी जायें। उन्होंने कहा कि मनुष्य को सदैव प्रसन्न रहना चाहिए क्योंकि प्रसन्नता परमात्मा की सबसे बड़ी भक्ति है। प्रसन्न रहने के लिए उन्होंने कुछ प्रयोग भी बताये। संतजी के प्रवचनों के दौरान प्रदेश की मुख्यमंत्री सुश्री उमा भारती भी मौजूद थीं, जिन्होंने संतजी से आशीर्वाद ग्रहण किया। सुश्री भारती ने कहा कि सरकार बनाना आसान है परंतु उसे चलाना काफी कठिन । ऐसे दुरूह कार्य को संपन्न करने में मुझे पूज्य बापूजी के आशीर्वाद की जरूरत है क्योंकि संत ही हमारे सच्चे मार्गदर्शक होते हैं। सुश्री भारती ने कहा कि मध्य प्रदेश शासन द्वारा आयोजित संगोष्ठी के समापन हेतु बापूश्री से अनुरोध करने पर उन्होंने सहर्ष स्वीकार किया। इसके लिए उन्होंने संतजी का आभार भी व्यक्त किया।

म.प्र. की मुख्यमंत्री सुश्री उमा भारती के सादर अनुरोध पर 'विकास की वैकल्पिक रणनीति' पर आयोजित राष्ट्रीय संगोष्ठी की पूर्णाहुति हेतु भोपाल पधारे पूज्य बापूजी संगोष्ठी में उपस्थित श्रोताओं को संबोधित करते हुए।
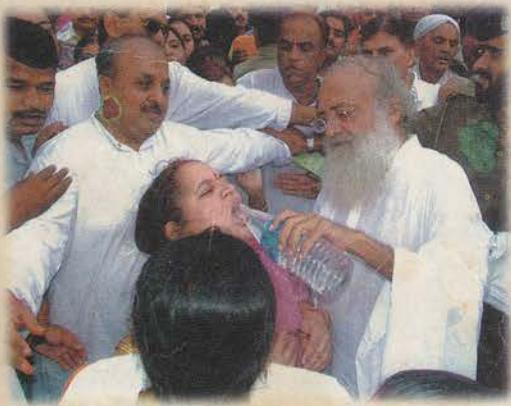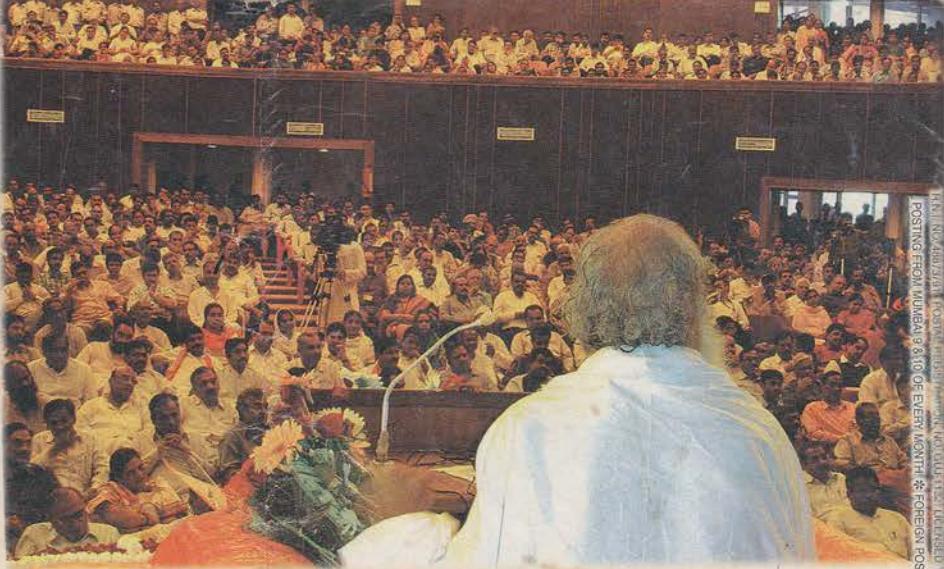
पूज्य बापूजी ने घायल भक्त के सिर पर हाथ फेरा

विधानसभा भवन में कार्यक्रम की समाप्ति के बाद जब मुख्यमंत्री के साथ पूज्य बापूजी बाहर निकल रहे थे, तभी गेट के पास बापूजी को करीब से देखने की ललक में एक महिला करीब छः-सात फुट ऊपर से गिरकर घायल हो गयी। कार में सवार हो रहे बापूजी और मुख्यमंत्री तत्काल उसके पास पहुँचे।

पूज्य बापूजी ने महिला के सिर पर हाथ फेरा और पानी पिलाते हुए कहा कि 'कुछ नहीं हुआ, सब ठीक है। तुम चलने लगोगी।' उनके दिलासाभरे वचन सुन महिला चलने लगी और भक्तों ने बापूजी के जयकारे लगाने शुरू कर दिये।

POSTING FROM MUMBAI 9 & 10 OF EVERY MONTH * FOREIGN POSTING 5 & 6 OF EVERY MONTH FROM AIRPORT PO - 400099. * DELHI REGD. NO. DL-11513/2003-05 WITHOUT PRE-PAYMENT LIC. NO.-U(C) 232/2003-05 POSTING FROM DELHI 5 & 6 OF EVERY MONTH.